भगिनी निवेदिता

भगिनी निवेदिता

रचना भोला 'यामिनी'

ज्ञान विज्ञान एजूकेयर

प्रकाशक • **ज्ञान विज्ञान एजूकेयर**
3639, प्रथम तल
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2022
मूल्य • तीन सौ रुपए
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

BHAGINI NIVEDITA *by* Smt. Rachna Bhola `Yaminee' ₹ 300.00
Published by **GYAN VIGYAN EDUCARE**
3639 Netaji Subhash Marg, Darya Ganj, New Delhi-110002
ISBN 978-81-928507-8-8

उन भगिनी व बंधुओं के नाम,
जो आज भी मौन भाव
से मानवता की सेवा में जुटे हैं!

दो शब्द

भगिनी निवेदिता ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन व जीवन मूल्यों को न केवल सहजता से अपनाया, अपितु पूर्णतया समर्पित होकर अपने 'निवेदिता' नाम को भी सार्थक कर दिया। निवेदिता वास्तव में स्वामी विवेकानंदजी की मानस पुत्री थीं। उनका वास्तविक नाम 'मारग्रेट नोबल' था। स्वामीजी के शिष्य उन्हें सम्मान के साथ 'भगिनी निवेदिता' कहकर पुकारते थे। बाद में उनका यही नाम पूर्ण रूप से प्रचलित हो गया।

श्रीअरविंद घोष उन्हें 'भगिनी निवेदिता' कहते थे और गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने उन्हें 'लोकमाता' का संबोधन दिया था। सिस्टर निवेदिता ने स्वामी विवेकानंदजी की शिष्या के रूप में भारतभूमि पर पहला कदम रखा और आजीवन यहीं की होकर रह गईं। उन्होंने तन-मन-धन से भारतवासियों को सदा सच्ची सेवा का पाठ पढ़ाया, तत्कालीन नारी समाज में जागृति का शंख फूँका और स्वतंत्रता संग्राम में भी योगदान दिया।

स्वामीजी ने उनके सामने एक हिंदू नारी का आदर्श रखा था, जो त्याग, सेवा, सहनशीलता, लज्जा, स्नेह, मर्यादा आदि गुणों से विभूषित हो, जो अपनी चारित्रिक दृढ़ता के बल पर संसार को जीना सिखाती है। निवेदिता ने सहर्ष इसी रूप को अपनाया और भारतवासियों की सेवा के व्रत से कभी नहीं डिगीं। उनके विषय में गुरुदेव ने एक बार कहा था—''अधिकतर लोग समय से, धन से व तन से सेवा करते देखे गए हैं, किंतु निवेदिता दिल से सेवा करती हैं।''

वे न तो ईसाई मिशनरियों की तरह धर्मप्रचार के उद्देश्य से भारत आई

थीं और न ही उनका कोई निजी स्वार्थ था। अपने गुरु स्वामी विवेकानंदजी के भारत को देखने-जानने व उसकी सेवा करने का लोभ ही उन्हें अपनी जन्मभूमि से दूर यहाँ तक खींच लाया था।

अपने प्रिय स्वजन, मातृभूमि, समाज व रहन-सहन से दूर, एक अनजान देश, अनजानी संस्कृति व अनजाने भाषा-भाषियों के बीच आकर बसना किसी तपस्या से कम नहीं था। यद्यपि प्रारंभ में उन्हें एक विदेशिनी होने के नाते मानसिक प्रताड़ना भी सहनी पड़ी, किंतु उन्होंने इस उपेक्षा व अपमान के गरल को भी सहर्ष स्वीकार किया और अपनी तपस्या जारी रखी। कुछ ही समय में बंगाली-हिंदू समाज ने भी उन्हें अपना लिया। श्रीरामकृष्णदेव की धर्मपत्नी शारदा देवी के रूप में उन्होंने अपनी 'माँ' को पाया, जिन्हें सभी सादरवश 'श्रीमाँ' कहकर संबोधित करते थे। इस प्रकार निवेदिता ने अपनी जन्मभूमि से सुदूर भारत देश में अपने लिए एक परिवार पाया।

स्वामीजी ने कहा था—''यदि सच्चे मन से भारत की सेवा करना चाहती हो तो उसकी आत्मा में लीन हो जाओ।''

भगिनी निवेदिता ने उनके शब्दों का अक्षरश: पालन किया।

सफेद चोगानुमा पोशाक, गले में रुद्राक्ष की माला, भूरे बालों का ऊँचा बँधा जूड़ा, चेहरे पर ममता, स्नेह व त्याग का भाव लिये एक आंग्ल भिक्षुणी! भगिनी निवेदिता को स्मरण करते ही एक तपस्विनी का चित्र उभरता है, जो अपने सुख-दु:ख, लाभ-हानि, यश-अपयश से परे गुरु की विचारधारा से एकात्म होने के लिए प्रयत्नशील है। संभवत: यही कारण था कि वे स्वामीजी की मानस दुहिता कहलाती थीं और वे उनके धर्मपिता! यहाँ तक कि स्वामीजी के देहावसान के पश्चात् भी गुरुबंधु उन्हें उनकी पुत्री के रूप में ही आदर व स्नेह देते रहे।

इस पुस्तक में भगिनी निवेदिता के समर्पित व्यक्तित्व की एक झलक प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। नि:संदेह ऐसे महान् चरित्रों की उपलब्धियाँ शब्दों में नहीं आँकी जा सकतीं, किंतु यह हमारी ओर से उस सच्ची साधिका के प्रति एक विनम्र श्रद्धांजलि है। आशा है, पाठकगण लेखन में हुई त्रुटियों को क्षमा करेंगे व उनसे अवगत करवाएँगे, ताकि आगामी संस्करण में उन्हें सुधारा जा सके।

इस लेखन कार्य के लिए मैं विशेष रूप से उन लेखकों व कृतियों के

प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके सहयोग के बिना यह कार्य असंभव था। इनमें प्रव्राजिका आत्मप्राणा की 'सिस्टर निवेदिता', वसुधा चक्रवर्ती की 'सिस्टर निवेदिता', आशा प्रसाद की 'स्वामी विवेकानंद—एक जीवनी', 'द कंपलीट वर्क्स ऑफ सिस्टर निवेदिता' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पतिदेव श्री संजय भोला ने पठनीय सामग्री जुटाने के अतिरिक्त निवेदिता के क्रांतिकारी पक्षों के भ्रम निवारण में सहायता की, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। पुत्र कुशल के लिए निवेदिता की जीवनी के हर पहलू को जानना व समझना जिज्ञासा का विषय रहा। अब पुस्तक आपके हाथों में है, पढ़कर स्वयं निर्णय लें कि मैं इस महान् आत्मा के प्रति न्याय करने में कहाँ तक सफल रही!

शुभकामनाओं के साथ,

—रचना भोला 'यामिनी'

अनुक्रम

	दो शब्द	७
१.	बाल्यकाल	१३
२.	व्याकुल हृदय	१६
३.	सत्य की खोज में	२०
४.	दत्तक मातृभूमि भारत	२६
५.	मारग्रेट नोबल से भगिनी निवेदिता	३०
६.	आध्यात्मिक विलयन	३४
७.	शिव और शक्ति से परिचय	३७
८.	एक नया अध्याय	४४
९.	लक्ष्य की ओर	४७
१०.	लोकमाता निवेदिता	५०
११.	निराशा और आशा	५२
१२.	एक सार्थक यात्रा	५५
१३.	परिवार से भेंट	५७
१४.	निष्काम कर्मयोगिनी	५९
१५.	कटु वास्तविकता	६१
१६.	आंतरिक संघर्ष	६४
१७.	आशीर्वचन	६६
१८.	धर्मपिता के आदर्श	६८
१९.	कर्मस्थली की ओर	७१

२०. स्वामीजी से अंतिम भेंट ७३
२१. सेवा-कार्यों में नए आयाम ७६
२२. नई उड़ान ७९
२३. दक्षिण भारत में अलख ८१
२४. बुद्ध की धरती पर ८३
२५. भारत माता की जय! ८५
२६. राजनीति और युवा शक्ति ८७
२७. राष्ट्रध्वज की कल्पना ८९
२८. विदेश की ओर ९१
२९. परिवार से अंतिम भेंट ९३
३०. अखंड भारत ९६
३१. संदेहों के बीच ९८
३२. एक और हिमालय यात्रा १००
३३. मानसिक आघातों की शृंखला १०३
३४. महाप्रयाण १०७

परिशिष्ट

१. माँ शारदा और निवेदिता ११०
२. ममतामयी दीदी : निवेदिता ११४
३. महान् व्यक्तियों के बीच ११९
४. आत्मीय संबंध १२२
५. गुरु के पत्र शिष्या के नाम १२४
६. निवेदिता की साहित्यिक उपलब्धियाँ १३०

बाल्यकाल

२८ अक्तूबर, १८६७। आयरलैंड के डंगानन, काउंटी टायरोन के एक परिवार में युवती मैरी इजाबेल हेमिल्टन प्रसव वेदना से व्याकुल थी। वह पहली बार मातृत्व-सुख पाने जा रही थी। अत: उसका व्याकुल होना, चिंतित होना स्वाभाविक ही था। उसने पति के साथ मिलकर ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि उनकी संतान सकुशल उत्पन्न हुई तो वे उसे ईश्वर-सेवा के लिए समर्पित कर देंगे।

पति-पत्नी की प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई और ईश्वरीय कृपा से मैरी ने एक स्वस्थ बच्ची को जन्म दिया। प्यारी सी बिटिया को गोद में उठाकर माँ मन-ही-मन बुदबुदाई—'हे ईश्वर! इस बच्ची को इतनी शक्ति देना कि यह मानव जाति के कल्याण का व्रत लेकर स्वयं को सेवा कार्यों के लिए समर्पित कर सके।'

बच्ची का नाम रखा गया 'मारग्रेट एलिजाबेथ नोबल'। आगे चलकर इसी मारग्रेट ने निवेदिता के रूप में स्वामी विवेकानंदजी को अपना गुरु स्वीकार किया और आजीवन भारत व भारतवासियों की सेवा का व्रत प्राणपण से निभाया।

मारग्रेट के पिता सैमुएल नोबल स्कॉटिश मूल के थे, किंतु काफी समय से उनका परिवार आयरलैंड में जाकर बस गया था। पुत्री के जन्म के बाद सैमुअल व मैरी के जीवन की दिशा काफी हद तक बदल गई। सैमुअल धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात् एक उपदेशक के रूप में विख्यात होने लगे।

पिता की दुलारी मारग्रेट ने घर से ही धार्मिकता का पहला पाठ सीखा। परिवार के धार्मिक संस्कारों की छाप पड़ना स्वाभाविक ही था। उपदेशक पिता अपनी सामर्थ्य न होने पर भी जरूरतमंदों की सहायता करते, रोगियों की दवाओं का प्रबंध करते और समाज-सेवा के उन कार्यों में नन्ही मारग्रेट उनके साथ होती। बाल्यकाल से ही उसके मन में दीन-दुखियों के प्रति करुणा और सेवा का भाव था। परिवार में एक बहन 'मे' व भाई 'रिचमंड' भी थे।

मारग्रेट के मन में भारत के प्रति उत्सुकता कैसे जाग्रत् हुई, इस विषय में एक जीवनीकार लिखते हैं कि एक बार उनके पिता से एक मित्र मिलने आए। वे एक प्रख्यात धर्मगुरु थे तथा भारत में कई वर्ष बिता चुके थे। उन्होंने भारत व भारतीय संस्कृति के विषय में विस्तार से बताया। मारग्रेट ने सबकुछ बेहद चाव से सुना। संभवत: कुछ समय बाद वे उन बातों को भूल भी गईं, किंतु मन पर पड़ी छाप मिट न सकी। कालांतर में उचित समय व परिस्थितियाँ सामने आते ही उनकी भारत आने की इच्छा बलवती हुई, जो कि उनकी भावी कर्मस्थली थी। कहते हैं कि मारग्रेट के पिता ने उनकी माँ से भी कहा था कि जब कभी उसे भारत जाने का सुअवसर मिले तो वे उसे रोकें नहीं। वहाँ वह अपनी योग्यता व सेवा-भावना को फलीभूत कर पाएगी।

सादगी व संयम से जीवनयापन करने वाले पिता की आय काफी कम थी, किंतु फिर भी वे निर्धनों की सहायता अवश्य करते थे। उन्हें परिवार चलाने के लिए काफी परिश्रम करना पड़ता था; परिणामत: वे चौंतीस वर्ष की अल्पायु में बुरी तरह से बीमार पड़े और चल बसे। उस समय पारिवारिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि माता मैरी अपनी तीन संतानों का भरण-पोषण कर पातीं। वे बच्चों को लेकर अपने पिता के पास आ गईं।

अन्य अंग्रेज बालक-बालिकाओं की तरह मारग्रेट की शिक्षा-दीक्षा हुई। उस समय तक मारग्रेट शिशु जीसस की पूजा करती थीं। मनुष्य जाति के कल्याण के लिए ईसा स्वयं सूली चढ़ गए, यह सोचकर ही बालिका आदर तथा श्रद्धा से नतमस्तक हो जाती।

मारग्रेट के पितामह ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया था। संभवत: वहीं से उसके मन में देश के प्रति उत्कट प्रेम की भावना भी जाग्रत् हुई। ननिहाल में दोनों बहनों को अध्ययन के लिए हैलीफेक्स कॉलेज भेजा गया। महाविद्यालय व छात्रावास के कठोर अनुशासित जीवन में

वे कुछ समय के लिए तो उकताईं, किंतु फिर उन्होंने स्वयं को उस परिवेश में ढाल लिया।

शिक्षिकाएँ भी होनहार छात्रा को पहचान गईं। वहीं उनकी भेंट कुमारी कोलिंस से हुई। कुमारी कोलिंस मारग्रेट के जिज्ञासु मस्तिष्क को शांत करने की, उसके प्रश्नों का उत्तर देने की भरपूर चेष्टा करती थीं। वहाँ से आने के बाद भी मारग्रेट व उनके स्नेहपूर्ण संबंध यथावत् बने रहे।

यह भी कहा जाता है कि हैलीफेक्स की प्रधानाचार्या लॉरेट के संपर्क में आने के पश्चात् ही उन्होंने धर्म की सेवा का व्रत लिया था।

इसी दौरान मारग्रेट ने संगीत, कला व प्राकृतिक विज्ञान की रुचि को विस्तृत किया। वे प्राकृतिक विज्ञान के माध्यम से जानना चाहती थीं कि संसार में सभी वस्तुओं का निर्माण किस प्रकार हुआ। गहन अध्ययन के पश्चात् प्राकृतिक नियमों की स्थिरता व सुसंगतता ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया।

महाविद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने को थी कि इसी दौरान उनके मन में ईसाई धर्म के सिद्धांतों के विषय में संदेह उत्पन होने लगे। दिनोदिन उनकी श्रद्धा घटती गई। उन्होंने चर्च जाना भी छोड़ दिया, किंतु कभी-कभी ऐसी मन:स्थिति हावी होती कि वे चर्च के धार्मिक अनुष्ठानों में ही डूब जातीं।

कहना न होगा कि उनके मन-प्राण एक 'परम सत्य' की खोज में व्याकुल थे। उन्होंने स्वयं एक भाषण में कहा भी था कि प्राकृतिक विज्ञान के पश्चात् बाल बुद्ध ने उनके चेतना-जगत् पर अधिकार जमाए रखा और उन्हें लगने लगा कि बुद्ध के उपदेश सत्य के अधिक निकट हैं। इस प्रकार मारग्रेट का मन व्याकुल रहता था। संभवत: समय ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर रहा था, जो भविष्य में मारग्रेट को एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायक होने वाली थीं।

□

व्याकुल हृदय

सन् १८८४ में मारग्रेट की शिक्षा समाप्त हुई। वे अध्यापन कार्य में रुचि रखती थीं, अत: उन्होंने केसविक स्कूल से शिक्षण कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसके पश्चात् वे रैक्सहैम में शिक्षिका के पद पर नियुक्त की गईं। रैक्सहैम एक खनन केंद्र था, वहाँ उन्हें अपनी सेवावृत्ति को पोषित करने का भरपूर अवसर मिला।

अध्यापन कार्य से समय मिलते ही वे वहाँ के निर्धन समुदाय के बीच सेवा करने पहुँच जातीं। यहीं से उनके जीवन में समाज-सेवा का भी शुभारंभ हुआ। बाल्यकाल से ही सेवा की जो भावना मन में बसी थी, वह यहाँ पूरी होने लगी।

मारग्रेट निर्धन खनिकों की बस्तियों में सेवा करतीं। उन्हें स्वच्छता का महत्त्व समझातीं। उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करतीं। इसी प्रयास में वे अविवाहित धर्म-प्रचारकों के संपर्क में आईं। उन्होंने उनके चरित्र के दोहरेपन को जाना और ईसाई धर्म के ऐसे पादरियों पर उनकी रही-सही आस्था भी जाती रही।

उनका मन कहीं से विमुख हो रहा था तो कहीं-न-कहीं नए स्नेह-बंधन भी जोड़ रहा था। प्रामाणिक सूत्रों के अनुसार, यहाँ उनकी भेंट वेलन के युवा इंजीनियर से हुई। इंजीनियर भी मारग्रेट के व्यक्तित्व से बेहद प्रभावित हुआ। समान रुचियों व विचारों से दो व्यक्तियों की मित्रता शीघ्र ही प्रेम में परिवर्तित हो गई। उन्होंने विवाह करने का भी निर्णय ले लिया था, किंतु सगाई की घोषणा से पूर्व ही युवक गंभीर रूप से बीमार पड़ गया और इस

दुनिया से चल बसा।

मारग्रेट के लिए प्रिय पात्र का आकस्मिक वियोग निश्चय ही दुखदाई रहा होगा, किंतु उन्होंने इसे ईश्वर की इच्छा जानकर अपने संतप्त हृदय को अन्य कार्यों में लगा दिया। इसके बावजूद रैक्सहैम का एकांत उन्हें खाने को दौड़ता था। अत: वे चेस्टर आ गईं।

चेस्टर में उनका भाई रिचमंड कॉलेज में पढ़ रहा था। बहन 'मे' लिवरपूल में एक अध्यापिका के पद पर कार्यरत थी। आयरलैंड से माँ भी वहीं रहने आ गई थीं।

इस प्रकार परिस्थितियों ने फिर से पूरे परिवार को एक छत तले रहने का अवसर दिया। वे भी परिवार के निकट संपर्क में रहकर काफी हद तक आश्वस्त और शांत हो गईं।

उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में ही आगे बढ़ने का फैसला कर लिया और एक नई शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने लगीं, जिसका आविष्कार स्विट्जरलैंड के शिक्षा सुधारक पैस्टालॉजी व जर्मनी के फ्रोबैल ने किया था। अनेक शिक्षाविद् इस प्रणाली पर काम कर रहे थे। स्वयं वे भी इसे अपनाना चाहती थीं, क्योंकि इसमें बच्चों के स्कूल पूर्व शिक्षण पर बल दिया जाता था। इन शिक्षा-शास्त्रियों ने बच्चों को खेल, व्यायाम, अवलोकन तथा रचनात्मक कार्यों द्वारा ही शिक्षा देने पर बल दिया।

इंग्लैंड के उत्साही शिक्षक दल ने इस प्रणाली को सीखने के पश्चात् छात्रों पर प्रयोग करने का निश्चय किया। इसी प्रक्रिया में मारग्रेट की भेंट श्री एवं श्रीमती लॉगमेन तथा श्रीमती डी-लिऊ से हुई। वे भी इसी शिक्षा-पद्धति के समर्थक थे। ये सभी 'संडे क्लब' के माध्यम से परस्पर परिचित हुए थे, जहाँ मारग्रेट के लेखों व भाषणों को बेहद चाव से सुना जाता था।

विद्वत् शिक्षक मंडली के बीच आकर मारग्रेट के विचारों को नई उड़ान मिली। उन्हें लंदन में श्रीमती डी-लिऊ के साथ पाठशाला खोलने का निमंत्रण मिला, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वे चेस्टर से आकर अपनी माँ के साथ विंबलडन में रहने लगीं।

इस पाठशाला में उनके द्वारा अभिनव शिक्षा पद्धति को लागू किया गया, जो काफी हद तक सफल रही। यहाँ छात्र खेल-खेल में ही बहुत कुछ सीख लेते थे। पहले उनकी क्षमताओं व योग्यताओं को पहचाना जाता और

फिर उनके अनुसार ही उन्हें प्रशिक्षित किया जाता।

मारग्रेट ने सन् १८९२ में अपना स्वतंत्र विद्यालय खोलने की चुनौती को स्वीकारा। उनके विद्यालय में किसी प्रकार का कोई औपचारिक बंधन नहीं था और न ही अनुशासन का कसा हुआ घेरा।

सभी बच्चे हँसते-खेलते इतना कुछ सीख लेते, जितना कि पाठ्य-पुस्तकों और अनुशासन की कड़ी मार से भी नहीं सीख सकते थे। मारग्रेट ने कुछ योग्य तथा अनुभवी शिक्षकों को भी अपने दल में सम्मिलित किया, जो अध्यापन कार्य में सहायता करते। इस विद्यालय में अनुसंधान कार्यों में रुचि रखने वाले शिक्षकों की भी मदद की जाती थी। कुछ एक ख्यातिप्राप्त चित्रकार थे, जो बच्चों के लिए काम करते थे। उन्होंने कला के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किए। मारग्रेट उनसे कला की शिक्षा लेने लगीं। आगे चलकर कला के इतने सूक्ष्म ज्ञान ने ही उन्हें एक प्रखर कला आलोचक का दर्जा दिलवाया।

इन सब गतिविधियों के साथ-साथ मारग्रेट एक परिपक्व बुद्धिजीवी के रूप में भी उभर रही थीं। वे प्राय: अपने भाई रिचमंड के साथ शेक्सपीयर के साहित्य पर चर्चा किया करती थीं। 'विंबलडन न्यूज', 'डेली न्यूज' व 'रिव्यू ऑफ रिव्यूज' नामक पत्रों में राजनीतिक लेख लिखने के अतिरिक्त वे 'रिसर्च' नामक विज्ञान पत्रिका से भी जुड़ी थीं।

लेडी रिपन के संपर्क में आने पर उनमें साहित्य के प्रति भी रुचि जाग्रत् हुई। कहना न होगा कि उचित समय व अवसर पाते ही उनके व्यक्तिव के छिपे गुण तथा विशेषताएँ उजागर होती जा रही थीं।

लेडी रिपन के अतिथि-कक्ष में प्राय: कला व साहित्य पर चर्चा करने वाले एकत्र होते थे। यहीं उनकी भेंट लेडी इसाबेल से हुई। पठन-पाठन में रुचि रखने वाले विचारकों की सहायता से सैसेमी क्लब की रूपरेखा तैयार हुई। यह वही क्लब था, जहाँ थॉमस हक्स्ले व बर्नाड शॉ जैसे ख्याति प्राप्त व्यक्तित्व भी आते थे। मारग्रेट शीघ्र ही क्लब की सक्रिय सदस्या बन गईं।

जीवन में इतनी व्यस्तता के बावजूद मारग्रेट के मन में एक अजीब सा खालीपन था। वे चाहकर भी इस भावना को अभिव्यक्त नहीं कर पा रही थीं। बस यही लगता था कि उनका कोई प्रिय है, जो कहीं खो गया है। उन्हें निरंतर एक तलाश थी, पर इस तलाश का कोई नाम न था।

धर्म संबंधी विभिन्न घटनाओं व मान्यताओं के विविध पक्षों से गुजरने

के बावजूद, उन्हें कोई ठोस आधार नहीं मिल पाया था। कोई ऐसा संकल्प, कोई आलोक जो जीवन में अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जा सके, जो जीवन के सही मायने, उसकी सार्थकता, जीवन के लक्ष्य की ओर इंगित कर सके।

अनिश्चितता व असुरक्षा के बीच उनकी आत्मा व्याकुल थी। धर्म-विषयक कल्पनाओं से बुद्धिजीवी ऊपर उठ चुके थे, अत: उन्हें किसी भी प्रकार के मायाजाल या गाथाओं में उलझाकर रखना संभव न था। वे भी उसी वर्ग से जुड़ी थीं, जो निरंतर सत्य की खोज में थे।

वे एक ऐसे धर्म की खोज में थीं, जो सभी आडंबरों व परंपराओं से परे एक मानवीय धर्म हो। एक ऐसा धर्म, जो मनुष्य को मनुष्य से प्रेम करना सिखाए। उसे उसकी संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर उठाकर शाश्वत सत्य की ओर ले जाए।

शीघ्र ही उनकी इस व्याकुलता का अंत हो गया। जीवन में एक ऐसा विस्मयकारी मोड़ आया, जिसने उनके स्नेही-संबंधी व इष्ट मित्रों को कहीं पीछे छोड़ दिया और वे एक ऐसे मार्ग, एक ऐसे विश्वास पर चल पड़ीं, जो उनकी आत्मा को उन्नत बनाते हुए पूर्ण मुक्ति की ओर ले जा सकता था।

□

सत्य की खोज में

''मैंने इस व्यक्ति के ईश्वरीय अंशों को, असामान्य नेतृत्व के गुण को पहचान लिया है। यही वह व्यक्तित्व है, जिसे मैं शत-शत प्रणाम करती हूँ। यही वह चरित्र है, जिसने मुझे विनम्र बनाया है। मैंने पाया कि एक धार्मिक उपदेशक के रूप में, उनके पास धर्म संबंधी विचारों की एक सुव्यवस्थित शृंखला है, जिसका मनन करने के बाद कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि सत्य कहीं और है।''

भगिनी निवेदिता ने ये शब्द उस समय कहे थे, जब उन्होंने स्वामीजी को अपने सच्चे पथप्रदर्शक, गुरु व धर्मोपदेशक के रूप में स्वीकार कर लिया, किंतु यहाँ तक पहुँचने की प्रक्रिया इतनी सरल नहीं थी। मारग्रेट नि:संदेह उनके व्यक्तित्व से बहुत पहले प्रभावित हो चुकी थीं, किंतु उनके उपदेशों व अभ्यासों के गहन व सूक्ष्म मनन के पश्चात् ही उन्होंने गुरुजी को एक अद्वितीय व्यक्तित्व का स्वामी माना। यहाँ हम मारग्रेट व स्वामीजी की प्रथम भेंट का उल्लेख करना चाहेंगे।

लंदन नवंबर मास की कड़कड़ाती सर्दी झेल रहा था, किंतु इसके बावजूद सामान्य दिनचर्या में कोई बाधा नहीं थी। लेडी इसाबेल मार्गेसन के घर स्वामीजी धर्म-चर्चा करने वाले थे। श्री एबेनेजर कुक ने मारग्रेट को वहाँ आने के लिए आमंत्रित किया। मारग्रेट स्वामी विवेकानंदजी को हाल ही में मिली सफलता के विषय में जान चुकी थीं। वे भी उस अनूठे व्यक्ति से मिलना चाह रही थीं, जिसने शिकागो की विश्व धर्मसभा में अपनी अद्‌भुत वक्तृता से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया था। इससे पूर्व वे लंदन में कुछ

व्याख्यान दे चुके थे और श्रद्धालु श्रोता उनके वचनों का अमृत-लाभ पाने के लिए उत्सुक थे।

पाश्चात्य तरीके से सजी बैठक में स्वामीजी काषाय वस्त्रों में विराजमान थे। उनके सामने अर्द्धगोलाकार रूप में पंद्रह-सोलह श्रोता बैठे थे। शीत ऋतु के प्रकोप को शांत करने के लिए अग्निस्थल में अग्निदेव उपस्थित थे। इस प्रकार कमरे में एक रहस्यमय-सा वातावरण बना हुआ था। पहली ही झलक में मारग्रेट अभिभूत हो उठीं। स्वामीजी नि:संकोच श्रोताओं की जिज्ञासाओं का समाधान कर रहे थे। उनके मुख से झरते संस्कृत श्लोक व उद्धरण ऐसे लग रहे थे मानो देववाणी हों। उन्होंने विविध विषयों पर चर्चा की। पूर्व के 'सर्वेश्वरवाद' के विषय में जानकर मारग्रेट को प्रसन्नता हुई, किंतु श्रोताओं में उपस्थित बुद्धिजीवियों को उस दिन के प्रवचन में कुछ भी नया नहीं दिखा। उनकी उन्नत बुद्धि भी स्वामीजी के अनूठे सिद्धांत के मर्म को परख नहीं पाई।

मारग्रेट भी अपने निवास पर लौट आईं। प्रत्यक्षत: तो कोई प्रभाव नहीं दिखा, किंतु अंतरात्मा बार-बार स्वामीजी का स्मरण दिला रही थी। उन्हें चेता रही थी—पहली ही भेंट में किसी व्यक्ति के विचारों को सत्य-असत्य, उचित-अनुचित, यथार्थ-भ्रम या फिर सार्थक-निरर्थक की श्रेणी में बाँट देना तो अन्याय होगा। यदि वे स्वामीजी की विचारधारा को समीप से जानना चाहती हैं, तो उन्हें बिना किसी पक्षपात के सुनना होगा, यदि कुछ भी अच्छा लगे तो उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए स्वीकारना भी होगा।

परिणामस्वरूप मारग्रेट ने नवंबर में ही स्वामीजी के दो भाषण और सुने। हर बार वे स्वयं को समझातीं कि सत्य के द्वार तक पहुँचने के लिए पूर्वग्रहों से मुक्त होना होगा, किंतु जब भी वे स्वामीजी के सम्मुख पहुँचतीं तो नाना प्रकार के प्रश्नों व संदेहों के घेरे में आ जातीं। वे स्वामीजी के प्रत्येक उपदेश को आत्मसात् करने से पहले अपने मापदंड पर तौलतीं, पूरे आत्मविश्वास के साथ तर्क-वितर्क करतीं। बार-बार उनके ऊपर स्वदेश-अभिमान, जाति व धर्म हावी हो जाते, किंतु स्वामीजी सदा प्रसन्न हृदय से उनकी जिज्ञासाओं का समाधान करते।

ये तो मानो हठीला नरेन ही रूप बदलकर आ पहुँचा था, जो गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के किसी भी उपदेश या प्रवचन को अपने तर्कों की पैनी धार का स्वाद चखवाए बिना नहीं छोड़ता था। क्या, क्यों, कैसे व कहाँ जैसे शब्दों से

युक्त प्रश्नों की पिटारी लिये बैठी मारग्रेट में उन्हें अपना अतीत दिखने लगा था।

स्वामी विवेकानंदजी का पूर्व में नाम 'नरेन' था। जब वे पहले-पहल अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचे थे तो वे भी कुमारी मारग्रेट नोबल की भाँति सत्यान्वेषी और जिज्ञासु प्रकृति के थे। उन्होंने भी पूरे छह वर्षों के कड़े संघर्ष के पश्चात् साधना मार्ग के प्रत्येक सोपान का ज्ञान पाया था। गुरु-शिष्या के बीच एक अटूट कड़ी जुड़ रही थी, किंतु उसे अपना समय तो लेना ही था।

कई वर्ष पश्चात् जब मारग्रेट के मित्र उसका उपहास कर रहे थे कि वे तो स्वामीजी के उपदेशों को तत्काल आत्मसात् कर लेती हैं तथा सहमत होने में भी देर नहीं करतीं। स्वामीजी भी वहीं थे, उस समय तो वे चुप रहे, किंतु उन्होंने बाद में मारग्रेट से कहा था—''किसी को इसका पश्चात्ताप नहीं होना चाहिए कि उसका मन आसानी से कुछ मान लेता है या नहीं मानता। मैंने भी गुरुदेव के विचारों को जानने-समझने के लिए छह वर्षों तक कड़ा संघर्ष व वाद-विवाद किया था, तभी आज मैं अपने मार्ग से भली-भाँति परिचित हूँ।''

मारग्रेट ने एक दिन स्वामीजी को कहते सुना कि किसी भी कार्य में छिपी भावना उस कार्य से कहीं अधिक शक्तिशाली होती है। वे अभिभूत थीं कि स्वामीजी किसी भी प्रकार के ज्ञानाडंबर का प्रदर्शन किए बिना, उनके सुप्त मानस को झकझोरकर जगा रहे थे। वे किसी भी विशेष धर्म का प्रचार न करते हुए केवल उसी दर्शन का प्रतिपादन कर रहे थे, जो सभी धर्मों का मताधार था। स्वामीजी का मानना था कि आत्मा प्रकृति के लिए नहीं बल्कि प्रकृति आत्मा के लिए है। उन्होंने कहा था कि माया कोई विभ्रम नहीं बल्कि एक कुहासा है, जिससे हम वास्तविकता को ढकने के आदी हो चले हैं। वे समस्त विश्व के लोगों को संबोधित कर रहे थे कि सभी प्रेम-भावना से विश्व की सेवा के लिए आगे जाएँ। प्रत्येक नागरिक को असत् का विरोध करते हुए सत् को ग्रहण करना होगा तथा त्याग की भावना को बल देना होगा, तभी वह शरीर की सीमाओं से परे मुक्त चेतना में अपना विकास कर सकता है।

इस प्रकार धीरे-धीरे कुमारी नोबल मारग्रेट ने उन्हें अपना गुरु मान लिया। स्वामीजी के लंदन छोड़ने से पहले वे उन्हें 'गुरुजी' कहकर पुकारने लगी थीं। बाद में उन्होंने अपनी पुस्तक 'द मास्टर एज आई सॉ हिम' में इस

विषय में लिखा—''मैंने उनके उदात्त रूप को पहचान लिया और उनके स्वजनों के प्रति प्रेम की दासी बन जाने की इच्छुक हो गई।''

मारग्रेट ज्ञान-योग की प्रत्येक कक्षा में उपस्थित रहतीं। वेदांत को उसके अभिनव रूप में समझने के लिए वे पूर्णतया कटिबद्ध थीं। एक दिन स्वामीजी ने प्रश्नोत्तर सत्र के दौरान उपस्थित श्रोताओं से कहा—

''क्या इतने बड़े संसार में २० ऐसे स्त्री-पुरुष भी नहीं, जो शहर के मुख्य मार्ग पर सबके सामने खड़े होकर बोलने की हिम्मत कर सकें कि उनमें ईश्वरीय अंश मौजूद है। वे जनकल्याण के लिए स्वयं को समर्पित करना चाहते हैं। वे ईश्वर का कार्य करने के लिए आए हैं और वही करेंगे। उनका जीवन जनहित के लिए ही बना है। क्या आपमें से कोई ऐसी महिला अथवा पुरुष है?''

मारग्रेट ने ये शब्द सुने तो उनका हृदय आंदोलित हो उठा, किंतु संकोचवश उनके मुख से 'हाँ' न निकल सकी।

मारग्रेट स्वामीजी का अनुसरण तो करना चाहती थीं, किंतु उचित दिशा-निर्देश नहीं मिल पा रहा था। उन्होंने स्वामीजी को पत्र लिखा। प्रत्युत्तर में स्वामीजी ने अपने कार्यों की रूपरेखा देते हुए उन्हें जगाने व प्रेरणा देने का कार्य किया।

फिर कुछ दिन इसी तरह बीते। एक दिन वार्त्तालाप के दौरान स्वामीजी ने मारग्रेट को उनके भावी जीवन का संकेत दे ही दिया। वे बोले, ''मैं अपने देश भारत में स्त्रियों की प्रगति हेतु कुछ कार्यक्रम बना रहा हूँ, मुझे पूरा विश्वास है कि तुम उस कार्य में मेरी मदद कर सकोगी।''

मारग्रेट को जीवन का लक्ष्य दिखने लगा था, किंतु अभी भी अस्पष्टता का कोहरा छँटा नहीं था। उन्होंने बाद में अपने एक मित्र को लिखा था कि वे सदा से जानती थीं कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रही थीं। किसी के पुकारने की राह देख रही थीं। स्वामीजी की बात सुनकर उन्हें लगा कि यह वही पुकार थी, जो उनके जीवन की दिशा बदल सकती है। यदि वे उस पुकार को न पहचान पातीं तो शायद पूरा जीवन दारुण वेदना बनकर रह जाता।

स्वामीजी लंदन में वेदांत कार्य को सुचारु रखने का भार अपने शिष्यों को सौंपकर चले गए। स्वामी अत्रेदानंद ने यह कार्यभार सँभाल लिया। शहर

के गण्यमान्य विशिष्ट जन के यहाँ वेदांत कक्षाएँ लगती थीं। इस कार्य में मारग्रेट उनकी यथासंभव सहायता किया करतीं। उन्होंने विंबलडन में भी वेदांत केंद्र प्रारंभ किए।

ब्रह्मवादिन में मारग्रेट लंदन में हो रहे कार्य का विवरण प्रस्तुत करती थी। स्वामीजी दूसरे देशों में वेदांत की पताका फहराने में व्यस्त थे, किंतु शिष्या के साथ पत्र-व्यवहार निरंतर चलता रहता था। मारग्रेट स्वयं स्वामीजी से पत्रों के माध्यम से मार्गदर्शन लेती रहती थीं।

एक बार ग्रीष्मकाल में कुछ समय के लिए वेदांत की कक्षाएँ नहीं लग पाईं तो मारग्रेट ने बड़ी खूबसूरती से उसका भी एक सार्थक रूप प्रस्तुत करते हुए कहा, ''वेदांत विचारधारा को सही तरीके से अपने मानस में स्थान देने के लिए इस प्रकार के विश्रांति मध्यांतर की आवश्यकता है। प्रकृति ने स्वयं ही वेदांतकारों को हमसे कुछ दिन के लिए दूर किया है, ताकि हम स्वयं अकेले अपने अज्ञान से लड़ सकें तथा श्रद्धा और भी बलवती हो सके।''

यहाँ तक कि स्वामी अत्रेदानंदजी के अमेरिका चले जाने के पश्चात् मारग्रेट ने अनौपचारिक रूप से वेदांत की कक्षाएँ जारी रखीं। भारत में स्वामीजी अपने तथा रामकृष्ण मिशन द्वारा किए गए कार्यों का उल्लेख पत्रों के माध्यम से करते थे। मारग्रेट सुदूर होते हुए भी हर प्रकार के मानसिक बंधन से बँधती जा रही थीं। लंदन में उनके द्वारा किए गए कार्यों की भी स्वामीजी प्राय: प्रशंसा किया करते थे, किंतु मारग्रेट तो कुछ और ही चाहती थीं, मानो उनके जीवन का परम लक्ष्य कुछ और ही था। वे तो अपने गुरु की मातृभूमि में रहते हुए उनके दिशा-निर्देशों पर कार्य करने के लिए व्याकुल थीं।

स्वामीजी पत्राचार द्वारा यही संदेश देते कि मारग्रेट को वहीं रहकर लंदन में अपने उत्तरदायित्व निभाने चाहिए। वास्तव में वे चाहते थे कि पश्चिमी देशों से भारत जाने के इच्छुक शिष्य-शिष्याएँ कहीं उसे भारत-भ्रमण या मनोविनोद का साधन न बना लें। यदि कोई सही मायनों में सच्ची लगन व समर्पण की भावना के साथ भारत जाना चाहे और यहाँ की जीवन-शैली को अपनाकर सेवा कार्यों में सहयोग दे, तब उसका स्वागत होगा। संभवत: यही कारण था कि मारग्रेट को भी वे भारत आने की अनुमति नहीं दे पा रहे थे। उन्हें लगता था कि भारतीय जलवायु तथा परिवेश पश्चिम वालों के लिए असहनीय है, तिस पर हमारे कठोर रीति-रिवाज व परंपराएँ भी तो थीं।

जिस भारतीय समाज में स्त्रियों की शिक्षा तक पाप मानी जाती थी, वहाँ गोरी मेम द्वारा सेवा-भावना को किस रूप में लिया जाता, उस विषय में भी वे आश्वस्त नहीं थे। स्वामीजी स्वयं कुछ वर्ष पश्चिमी देशों में बिता चुके थे। वे जानते थे कि पूर्वी तथा पाश्चात्य सभ्यता के रहन-सहन और जीवन-शैली में आकाश-पाताल का अंतर था।

मारग्रेट भारत आना चाहती थीं, उनके इस दृढ़ निश्चय को जानकर स्वामीजी ने तत्कालीन परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से वर्णित किया और यह भी कहा कि यदि वे भारत जाएँगी तो उनका यह बलिदान केवल स्वामीजी के लिए ही नहीं बल्कि पूरे देश व सत्य के लिए होगा; अंततः सत्य की खोज में निकलीं मारग्रेट ने सत्य का संधान कर ही लिया।

□

दत्तक मातृभूमि भारत

कुमारी नोबल मारग्रेट ने अपनी माँ को बताया कि मैं निकट भविष्य में भारत जानेवाली हूँ तो माँ ने पुत्री के वियोग की पीड़ा को भुलाकर सहर्ष जाने की अनुमति दे दी; क्योंकि वे जानती थीं कि उनकी पुत्री का जन्म किसी महत्त्वपूर्ण लक्ष्य की पूर्ति के लिए ही हुआ है। चूँकि उन्होंने तो मारग्रेट को जन्म से पूर्व ही ईश्वर की सेवा में लगाने का वचन दिया था। अब यदि स्वयं ईश्वर उनकी पुत्री के भावी जीवन की रूपरेखा गढ़ रहा था तो वे बाधक क्यों बनें?

मारग्रेट ने कुछ ही महीनों में प्रस्थान की सब तैयारी कर ली। उन्होंने अपने विद्यालय का कार्यभार बहन मैरी को सौंपा और जलयान पर सवार होकर अपनी दत्तक मातृभूमि 'भारत' के लिए रवाना हुईं। निश्चय ही यह उनके जीवन के निर्णायक क्षण रहे होंगे। केवल सेवा के माध्यम से आत्मोपलब्धि कैसे प्राप्त हो सकती है, यही सीखने के लिए वे अपनी जन्मभूमि, परिवारजन, इष्ट-मित्रों, परिवेश, जीवन-शैली व मान्यताओं से दूर एक ऐसे अनजाने देश में जा रही थीं, जहाँ उनके गुरु स्वामी विवेकानंद ही उनके सर्वस्व थे, वही उनके मात-पिता, बंधु और सखा थे।

मारग्रेट उस तथ्य से भी भली-भाँति परिचित थीं कि संभवत: भारतीय उनके सेवा-व्रत को गंभीरता से लेने के बजाय उन्हें दुत्कार दें। अपनी पुत्रियों को उनके पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजना तो दूर रहा, उनकी छाया से भी दूर रखें। उनसे घृणा करें और उन्हें अस्वीकार कर दें, किंतु मन-ही-मन कहीं यह आश्वासन भी था कि स्वामीजी का स्नेह और संबल सदा उनके साथ रहेगा। वे उन्हीं की प्रेरणा के बल पर जीवन के कठोर व्रत का पालन करेंगी।

२८ जनवरी, १८९८ को कुमारी नोबल मारग्रेट का जलयान कलकत्ता पहुँचा। उनका स्वागत करने के लिए स्वयं विवेकानंद बंदरगाह पर उपस्थित थे। स्वामीजी को देख उनके व्याकुल हृदय को शांति व सांत्वना मिली। रामकृष्ण संप्रदाय के कुछ अनुयायियों के पार्क स्ट्रीट स्थित निवास पर उनके ठहरने की व्यवस्था की गई।

पहले कुछ दिन उन्होंने अपने अंग्रेज मित्रों के साथ कलकत्ता के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण किया, किंतु वे कोई विदेशी पर्यटक तो थीं नहीं, जो केवल पर्यटन स्थलों का भ्रमण कर भारत का जयगान करके लौट जातीं। उन्हें तो हिंदू समाज की मनोवृत्ति व दृष्टिकोण का परिचय पाना था, उसकी जीवन-शैली, कायदे-कानून व परंपराओं को जानना था। यह तभी हो सकता था, जब वे उन लोगों के बीच रहें और वे लोग भी उन्हें हृदय से अपना लें।

इस दौरान स्वामीजी की जन्मभूमि को देखने और उनके लोगों की सेवा की आंतरिक अभिलाषा लिये कुछ अन्य विदेशी युवक-युवतियाँ भी भारत आ पहुँचे। श्री गुडविन विवेकानंदजी के शिष्य बन चुके थे, अब वे उनके आशुलिपिक भी थे, श्रीमती बुल, कुमारी मैक्लाउड व कुमारी मुलर मठ व मंदिर बनाने में आर्थिक सहयोग दे रही थीं। स्वामीजी के गुरुभाई भी पूरी कर्मठता व उत्साह के साथ जनसेवा में लगे हुए थे।

स्वामीजी चाहते थे कि मारग्रेट सबसे पहले बंगाली बोलना सीखे, ताकि परस्पर संप्रेषण की समस्या समाप्त हो और वे आम लोगों में घुल-मिल सके। बेलूर गाँव में मारग्रेट को अन्य पाश्चात्य शिष्याओं के साथ मठभूमि के समीप लिये गए घर में ठहराया गया। घर छोटा पड़ने लगा तो वहाँ कुछ कुटिया भी बनवाई गईं। स्वामी स्वरूपानंदजी कुमारी नोबल मारग्रेट की शिक्षा की व्यवस्था कर रहे थे।

मारग्रेट स्वयं को दृढ़तापूर्वक भारतीय परिवेश के अनुसार ढालने का प्रयास कर रही थी। एक दिन कुमारी मैक्लाउड ने स्वामीजी से पूछा, ''मैं किस प्रकार आपके कार्यों में सर्वोत्तम तरीके से सहायता कर सकती हूँ?''

स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''भारत से प्यार करके और यहाँ के लोगों को अपनाकर।''

मारग्रेट ने भी ये शब्द सुने और इन्हें गुरु का संदेश मानकर हृदयंगम कर लिया।

स्वामी विवेकानंदजी रामकृष्ण संप्रदाय के बीच जाति तथा वर्ण-व्यवस्था के बंधनों को तोड़ने के लिए कटिबद्ध थे। वे समाज में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों को भी मिटाना चाहते थे। उसी वर्ष श्रीरामकृष्ण परमहंस के जन्मोत्सव का औपचारिक समारोह उनकी कार्यसिद्धि का माध्यम बना। उस समारोह में सभी जातियों तथा वर्गों के लोगों ने भाग लिया। स्वामीजी ने स्वयं महोत्सव की व्यवस्था का भार सँभाला। यह समारोह बाबू पूर्णचंद्र देव के मंदिर में होनेवाला था। कुमारी मुलर तथा मारग्रेट ने इच्छा व्यक्त की कि वे समारोह से पूर्व नाव से दक्षिणेश्वर के बाग वाले मंदिर में जाना चाहती हैं। वे उस पावन मंदिर के दर्शन करने को उत्सुकथीं, जहाँ संत रामकृष्ण परमहंसजी भाव समाधि में लीन होते थे, जो स्थान उनकी लीला-स्थली रहा था।

हिंदू न होने के कारण मंदिर के गर्भगृह में तो वे प्रवेश न पा सकीं। अत: रामकृष्णजी के कक्ष के बाहर बैठ गईं। कुमारी मुलर उस समय गेरुए वस्त्रों में थीं, साथ में मारग्रेट भी। उनके मार्गदर्शन के लिए बंगाली विद्वान् भी थे। स्थानीय लोग उन्हीं बंगाली महाशय से तर्क-वितर्क पर उतर आए कि एक विदेशिनी को गेरुए वस्त्र पहनने का अधिकार किसने दिया। तकरीबन एक घंटे तक यही बहस चलती रही, अंतत: दोनों महिलाओं की भक्ति व श्रद्धा रंग लाई, उनके लिए श्रीरामकृष्णदेव के कक्ष के द्वार खोल दिए गए।

मारग्रेट ज्यों ही कक्ष में नतमस्तक हुईं, उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बह निकले। वे अपने गुरु के भी गुरु को मन-ही-मन श्रद्धांजलि अर्पित कर भावी जीवन के लिए आशीर्वाद माँग रही थीं। इसके पश्चात् वे सब समारोह स्थल पर पहुँचीं। सचमुच आयोजन तो काफी भव्य था। यह शुभ दिन बहुतों के लिए चिरस्मरणीय रहा। उस दिन लगभग पचास व्यक्तियों को यज्ञोपवीत प्रदान किया गया। जिनमें से कुछ स्वामीजी के तथा कुछ रामकृष्णजी के भक्त थे। इस अवसर पर स्वामीजी ने कहा—

''आज श्रीरामकृष्ण की जन्मतिथि है। उनका नाम लेकर आज प्रत्येक व्यक्ति पवित्र बन सकता है। अत: आज का दिन यज्ञोपवीत धारण करने के लिए सर्वोत्तम है। क्षत्रियों तथा वैश्यों के समान आज इन सभी को गायत्री मंत्र की दीक्षा दो। समय आने पर इन्हें ब्राह्मण बनाना होगा। सभी हिंदू आपस में भाई हैं। हम हिंदू ही अपने कुछ भाइयों को सदियों से यह कहकर नीचा समझते आए हैं कि हम लोग तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकते। यही कारण है कि हमारा देश आज दैन्य,

कायरता, जड़ता व मूर्खता की सीमा पर आकर गिर गया है। तुम्हें उन्हें आशा व उत्साह की सीख देकर ऊपर उठाना है। उन लोगों से कहो, तुम हमारी तरह मनुष्य हो, तुम्हें हमारी तरह ही सब अधिकार प्राप्त हैं।''

समारोह में भीड़ इतनी अधिक थी कि शिष्याओं को स्वामीजी तक बड़ी कठिनाई से ले जाया गया। इसी समारोह में उनकी भेंट 'गोपाल की माँ' से हुई। 'गोपाल की माँ' का नाम था 'अघोरमणि'। वे बालकृष्ण की भक्त थीं। श्रीरामकृष्णदेव से मिलने के बाद वे उन्हीं को अपना गोपाल मानने लगी थीं, अत: सब उन्हें 'गोपाल की माँ' कहने लगे थे। उन्होंने बड़े ही प्रेम तथा ममत्व से मारग्रेट का हाथ थामा और उन्हें महिलाओं के कक्ष में ले गईं। विदेशिनी महिला का हाथ थामकर महिला समाज के सम्मुख ले जाना ही इस बात का संकेत था कि स्वामी विवेकानंदजी की पाश्चात्य शिष्याओं को उनके अपनों ने भी सहर्ष अपना लिया था।

रामकृष्ण मिशन के उद्घाटन समारोह का सभापतित्व स्वामीजी ने किया। वहाँ खचाखच भरे हॉल को संबोधित करते हुए स्वामीजी ने कहा, ''रामकृष्ण मिशन की सहायता के लिए हमें इंग्लैंड से कुछ महान् विद्वानों का साथ मिला है, किंतु आज इंग्लैंड ने हमें मारग्रेट नोबल के रूप में अमूल्य उपहार दिया है। हमें इनसे ढेर सी आशाएँ व अपेक्षाएँ हैं। मैं आप सबका परिचय कुमारी मारग्रेट नोबल से करवाना चाहता हूँ, जो अपने कुछ विचार आपके सामने प्रकट करेंगी।''

मारग्रेट के लिए भारतीय जनसाधारण के सम्मुख अपने विचार व्यक्त करने का यह पहला अवसर था। उन्होंने सुव्यवस्थित ढंग से दिए गए अपने भाषण में इंग्लैंड के कार्यों की चर्चा करने के बाद स्वामीजी का उल्लेख किया और भाषण के अंत में 'श्रीरामकृष्णदेवजी की जय-जयकार' के साथ कहा—

''आप सबके बीच एक ऐसा व्यक्ति विद्यमान है, जिसकी सनातन विचारधारा दीर्घकाल तक सुरक्षित रखी जा सकती है; जिसके पास पूरे विश्व के लिए महान् आध्यात्मिक विचारों का अमूल्य कोष है। मैं इस महान् व्यक्ति के कार्य में मदद के लिए, उनकी सेवा के लिए तथा आप सबकी सेवा की अदम्य लालसा के साथ यहाँ आई हूँ।''

श्रोताओं ने हर्षोल्लास के साथ कुमारी नोबल के शब्दों का स्वागत किया। इस प्रकार वे भारतीय जनसाधारण के बीच लोकप्रियता पाने लगीं।

□

मारग्रेट नोबल से भगिनी निवेदिता

मारग्रेट के जीवन का नया अध्याय आरंभ होने वाला था। स्वामीजी ने उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत के लिए दीक्षित करने की अनुमति दे दी। वे जान गए थे कि कुमारी नोबल भारत के लिए किसी वास्तविक संपत्ति से कम नहीं और भारत उनसे अवश्य ही लाभान्वित होगा।

२५ मार्च, शुक्रवार को दीक्षा देने का दिन तय हुआ, किंतु उससे पूर्व उन्हें श्रीमाँ से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीमाँ ने जिस ललक से मारग्रेट को अपनाया, अपने हृदय में स्थान दिया, वह वास्तव में सराहनीय व अविश्वसनीय है।

एक हिंदू ब्राह्मण महिला का विदेशी महिलाओं के साथ भोजन ग्रहण करना तत्कालीन समाज के लिए अकल्पनीय था; किंतु माँ ने इसी कार्य द्वारा पाश्चात्य शिष्याओं को हिंदू समाज में समाहित करने की स्वीकृति दे दी थी। संभवत: स्वामीजी भी इस विषय में पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे, अत: यह समाचार पाने पर उन्हें भी बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने बाद में पत्र द्वारा स्वामी रामकृष्णानंदजी से इस अभूतपूर्व घटना का उल्लेख भी किया।

अगले दिन वे सब स्वामीजी के साथ मठ में गए। उस समय मठ नीलांबर मुखर्जी के उद्यान भवन में था। मारग्रेट के लिए वह एक अविस्मरणीय दिन था। स्वामीजी ने पहले उन्हें भगवान् शिव की पूजा-अर्चना करना सिखाया, फिर उन्हें ब्रह्मचर्य संस्कार में दीक्षित किया, साथ ही नया नाम भी दिया।

विदेशिनी मारग्रेट नोबल के स्थान पर काषाय वस्त्रों में लिपटी शांत व गरिमामयी भिक्षुणी सामने खड़ी थी। स्वामीजी ने उनका नामकरण किया 'निवेदिता', अर्थात् समर्पिता। स्वयं को गुरु-लक्ष्य के प्रति समर्पित करने के लिए ही मारग्रेट का जन्म हुआ था। मारग्रेट के आंग्ल व्यक्तित्व का भारतीय संस्करण सबके सामने था। उस दिन उनके चेहरे का अपूर्व तेज देखने योग्य था, मानो अंदर का दृढ़ संकल्प व शुभेच्छा ही चेहरे की आभा बन आलोकित हो रहे थे। मारग्रेट नोबल से निवेदिता बनकर उन्हें अपूर्व आनंद प्राप्त हुआ। जब वे कार्यक्रम के अंत में भगवान् बुद्ध के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित करने लगीं तो स्वामीजी ने उनके मस्तक पर भस्म का त्रिपुंड लगाकर आशीर्वाद दिया—''जाओ, वत्से! तुम उन्हीं का अनुसरण करो, जिन्होंने बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व पाँच सौ बार जन्म लिया तथा जनसेवा में प्राणों का उत्सर्ग कर दिया।''

यह मठ-जीवन के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक थी, क्योंकि भगिनी निवेदिता से पूर्व किसी भी महिला को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर संन्यासिनी नहीं बनाया गया था।

स्वामीजी मैक्लाउड को 'जया' तथा श्रीमती बुल को 'धीरा माता' कहकर संबोधित करते थे। उसी दिन से भगिनी निवेदिता की तन-मन से हिंदू बनने की शिक्षा-दीक्षा आरंभ हुई। वे एक ब्रह्मचारिणी के रूप में भारत के लिए अपना जीवन अर्पित कर चुकी थीं। स्वामीजी ने उनके सामने एक धर्मपरायण हिंदू विधवा के जीवन का आदर्श रखा, जिसे उन्होंने सहर्ष अपना लिया—सात्त्विक आहार, वसन एवं वृत्ति। भगिनी निवेदिता के लिए पूरा भारत ही मानो एक कुटुंब था और उस वृहत्तर परिवार की सेवा उनका लक्ष्य।

दीक्षा-संस्कार के दिन स्वामीजी ने एक सच्चे शिवयोगी के रूप में जो भजन सुनाए थे, वे निवेदिता के लिए आजीवन एक अनमोल थाती रहे। त्रिमूर्ति (जया, धीरा माता व निवेदिता) को बेलूर की पुरानी कुटिया में रहने पर स्वर्गिक सुख की अनुभूति होती थी। प्रायः स्वामीजी अपने शिष्यों के साथ वहाँ आ जाते, फिर किसी घने वृक्ष की छाया में गुरु-शिष्यों के बीच आपसी संवाद व वार्त्तालाप का क्रम आरंभ होता। विविध विषयों पर चर्चा होती, किंतु स्वामीजी की बातों का केंद्र-बिंदु था 'भारत'।

भारत के भूगोल, विज्ञान, इतिहास, धर्म, संस्कृति आदि विषयों पर धाराप्रवाह बोलते स्वामीजी कहीं खो से जाते। स्वयं शिष्य-शिष्याएँ भी गुरु

द्वारा सृजित काल्पनिक लोक के साक्षी होते। जहाँ कभी महान् संत व देशभक्त अपनी कथा बखानते तो कहीं पावन हिमालय अपनी सीमाओं का स्वयं वर्णन करता। स्वामीजी अपनी मातृभूमि के प्रति बहुत संवेदनशील थे। भारत की पीड़ा मानो उनकी अपनी आंतरिक पीड़ा थी।

उन दिनों स्वामीजी ने विदेशी शिष्यों को भारतीय वातावरण के अनुसार शिक्षित-प्रशिक्षित करने पर बल दिया। यद्यपि जन्म से ही मिले संस्कारों, मान्यताओं व धारणाओं को एक ही झटके में तोड़ डालना इतना सहज नहीं था, किंतु स्वामीजी असीम धैर्य के साथ डटे रहे। विदेशियों के हृदय में भारत के प्रति कोई भी गलत धारणा दिखती तो वे उसे मिटाने में कोई कसर न छोड़ते। पहले वे उनकी शंकाओं को बाहर निकालते और फिर तर्कों के द्वारा उनका खंडन करते। इस प्रक्रिया में उन्होंने हिंदू धर्म व उसकी मान्यताओं से जुड़ी कई गलत धारणाओं का विरोध किया और उनका सही मर्म समझाने में भी सफल रहे।

निवेदिता पर वे विशेष रूप से ध्यान देते, क्योंकि वह सदा के लिए अपना परिवार व जन्मभूमि छोड़कर सेवा का व्रत ले चुकी थी। उनकी मानसिकता का भारतीयकरण होना बहुत आवश्यक था। उन्होंने स्वामीजी के एक प्रश्न के उत्तर में कहा था कि दीक्षा ग्रहण के पश्चात् भी उनके मन से यह भावना नहीं गई कि वे एक ब्रिटिश नागरिक हैं।

वह धीरे-धीरे स्वयं को, अपने अस्तित्व को भारतवर्ष में समाहित करने की दिशा में कदम बढ़ा रही थीं। स्वामीजी ने देशी-विदेशी शिष्य-शिष्याओं को एक सूत्र में बाँधने के लिए निर्भीक कदम उठाया। विदेशी शिष्याओं के हाथ से बना भोजन करने के लिए उन्होंने किसी को बाध्य नहीं किया, किंतु परिस्थितियाँ अपने-आप ही सहज होती चली गईं। विदेशी शिष्य-शिष्याएँ भी सबके साथ भोजन करने लगे। स्वयं स्वामीजी भी उनके हाथ का पका भोजन ग्रहण करते और शिष्यों को भी देते। इस प्रकार भगिनी निवेदिता ने रामकृष्ण बंधुत्व में भी स्थान पा लिया। श्रीमाँ का वरदहस्त तो वे पा ही चुकी थीं।

सभी शिष्य-शिष्याएँ मठ के निर्माण-कार्य में व्यस्त थे। स्वामीजी को अस्वस्थता के कारण दार्जिलिंग जाना पड़ा। भगिनी निवेदिता व अन्य शिष्याओं की देखभाल अन्य संन्यासी बंधुओं ने की।

संन्यासी बंधु उनके भोजन व मनोरंजन आदि का पूरा ध्यान रखते। स्वामीजी की अनुपस्थिति के भार को हलका करने के लिए वे विविध उपाय करते। संभवत: स्वामीजी भी यही चाहते थे कि विदेशी भक्त महिलाएँ मठ के संन्यासी बंधुओं के साथ एकात्म हो जाएँ।

कुछ ही दिन बाद कलकत्ता में प्लेग ने संक्रामक रूप ले लिया। निर्दोष स्त्री-पुरुष व बच्चे प्लेग से ग्रस्त होकर मरने लगे। रोग से अधिक रोग का भय लोगों के प्राण ले रहा था। भयभीत नागरिक कलकत्ता छोड़कर भाग रहे थे। सरकार द्वारा इस कार्य का विरोध होने पर नगर में बड़ी उथल-पुथल सच गई।

मानवता के सेवक स्वामी विवेकानंद यह समाचार पाते ही कलकत्ता लौट आए। मठ के सभी नागरिकों ने प्लेग की रोकथाम के उपाय किए। बँगला तथा हिंदी भाषा में प्रचार-पत्र बँटवाए गए, जिन पर लिखा था कि रोग के लिए प्रतिरोधक क्षमता कैसे विकसित की जाए। उस समय तो देखकर लगता था कि प्लेग-पीड़ित जनता की सेवा ही रामकृष्ण मिशन का एकमात्र उद्देश्य और लक्ष्य था।

स्वामी विवेकानंद व उनके शिष्य इस कार्य के लिए सहर्ष मठ की भूमि बेचने को भी प्रस्तुत थे, किंतु दैवकृपा से इसकी नौबत नहीं आई और आर्थिक सहायता भी प्राप्त होने लगी। जाति तथा वर्ण भेद को भुलाकर सभी रोगियों की जी-जान से सेवा हो रही थी। जहाँ रोग का आक्रमण हुआ था, उन मुहल्लों में कीटाणुनाशक औषधियों का छिड़काव किया गया।

प्लेग पर नियंत्रण के पश्चात् स्वामीजी अपने कुछ शिष्य-शिष्याओं के साथ उत्तरी भारत के भ्रमण पर निकल पड़े।

□

आध्यात्मिक विलयन

भगिनी निवेदिता भारतीय परिवेश में रच-बस रही थीं, किंतु अभी उनका आध्यात्मिक विलयन होना शेष था। उत्तरी भारत की यात्रा में शिष्या ने स्वामीजी के साथ जितना भी समय बिताया, वह उनके भावी जीवन की सार्थक नींव बनने में सहायक रहा। स्वामीजी यात्रा के दौरान सभी सहयात्रियों को अतीत के सुनहरे पृष्ठों का परिचय भी देते रहे।

नैनीताल के पश्चात् वे सभी अल्मोड़ा पहुँचे। निवेदिता प्राय: स्वामीजी के साथ हुई बातचीत के मुख्य अंशों को संक्षिप्त रूप में लिख लेतीं और बाद में उन पर विचार करतीं। संभवत: यहीं से उनकी लेखन क्षमता भी गहरी हुई होगी।

निवेदिता जानती थीं कि वे केवल स्वामीजी की नहीं बल्कि उनके देश की, सत्य की सेवा करने के लिए आई हैं। वे निवेदिता अर्थात् समर्पिता तो कहला रही थीं, किंतु मानो पूर्ण समर्पण में कोई कसर रह गई थी। अपने देश के प्रति अनुराग व ममत्व को भुलाना आसान न था। स्वामीजी भी उनकी इस मानसिकता को जानते थे, किंतु उनका मानना था कि किसी भी व्यक्ति की विचारधारा स्वत: प्रेरित होनी चाहिए। किसी भी प्रकार के दबाव या विरोध से उसकी प्राकृतिक सुंदरता जाती रहती है।

निवेदिता के लिए अपने निजी स्वातंत्र्य को मिटा देना काफी कठिन था। यद्यपि वे जी-जान से स्वामीजी के भारत को अपना बनाने व उससे प्रेम करने में जुटी थीं, किंतु वे तो चाहते थे कि देशप्रेम की जो अग्नि उनके हृदय में प्रज्वलित है, वही बहन निवेदिता तक भी पहुँचे।

निवेदिता के लिए कठिन परीक्षा की घड़ी थी। उनकी दशा तो उस स्कूली छात्रा की तरह थी, जिसे चाहते, न चाहते हुए भी अध्यापक की बातों से सहमत होना पड़ता है। उस समय तक निवेदिता भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के व्यवहार के लिए भी सचेत नहीं थीं, अत: जब भी स्वामीजी अंग्रेजों के विरुद्ध कुछ भी कहते तो वे प्रतिपक्ष में तर्क देने लगतीं। स्वामीजी चाहते थे कि वह अज्ञानतावश उत्पन्न अधकचरी धारणाओं से मुक्ति पाकर प्रत्येक धारणा में छिपे सत्य का अन्वेषण करें।

स्वामीजी शिष्य-शिष्याओं के साथ वार्त्तालाप करते और निवेदिता का मानसिक संघर्ष चलता रहता। यह दो ऐसे व्यक्तियों की आंतरिक कलह थी, जो सदा-सदा के लिए मानसिक रूप से एक होने वाले थे। निवेदिता की निराशा, उदासीनता व मनोवेदना प्रबल होती जा रही थी। स्वामी स्वरूपानंद व श्रीमती बुल मानसिक नैराश्य के उन क्षणों में सहायक बने।

एक दिन श्रीमती बुल ने स्वामीजी को निवेदिता की इस मनोदशा के विषय में बताया। यद्यपि उन्हें भय था कि कहीं स्वामीजी के हृदय को इस समाचार से ठेस न पहुँचे, किंतु उन्होंने सबको पूरे धैर्य के साथ सुना, परंतु कोई उत्तर नहीं दिया।

सभी शिष्याएँ रात को बरामदे में एकत्र थीं। स्वामीजी श्रीमती बुल से बोले, ''तुमने ठीक कहा था, इस स्थिति को बदलना ही पड़ेगा। मैं कुछ समय के लिए एकांतवास करने वन में जा रहा हूँ। वहाँ से लौटूँगा तो अपने साथ शांति लेता आऊँगा।''

आकाश में क्षीण चंद्ररेखा उदित थी। उसकी ओर देखकर भगिनी निवेदिता को संबोधित किया—''मुसलमान लोग नवीन चंद्रमा का बड़ा आदर करते हैं, आओ, हम भी आज नवीन चंद्रमा के साथ नवजीवन आरंभ करें।''

निवेदिता उनके चरणों के पास घुटनों के बल बैठी थीं। स्वामीजी ने स्नेह से उनके मस्तक पर आशीर्वाद का वरदहस्त रख दिया और उस स्नेहपूर्ण आशीर्वाद ने निवेदिता के जातिगत तथा जन्मगत संस्कारों का लोप कर दिया। उस दिन उनकी विद्रोही शिष्या सदा के लिए गुरु की विचारधारा में लीन हो गई।

बाद में इस अवसर का उल्लेख करते हुए निवेदिता ने लिखा—''काफी समय पूर्व श्रीरामकृष्णदेव ने अपने शिष्यों से कहा था कि उनका नरेन अपने स्पर्श मात्र से दूसरों में ज्ञान का संचार कर देगा। संभवत: अल्मोड़ा की उस

संध्याकालीन घड़ी में ठाकुर की वही भविष्यवाणी सच साबित हुई थी।''

उस दिन निवेदिता ने जाना कि महान् व सच्चा गुरु वही होता है, जो शिष्य को अपनी मानसिक शक्ति के बल पर सत्य से जोड़ सके तथा उसके हृदय में बसे मायाजाल को भी छिन्न-भिन्न कर दे।

निवेदिता ध्यान व गुरुकृपा के माध्यम से निराशा, उदासीनता व मानसिक जड़ता के कुचक्र से बाहर आ चुकी थीं। अब उन्हें गुरुजी के विचारों को समझने के लिए विशेष प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता था। स्वामी स्वरूपानंदजी भी मनोयोग से अपनी गुरुबहन को भारतीय धर्मग्रंथों का ज्ञान सौंप रहे थे। उनके द्वारा मिले गीतापाठ की शिक्षा से निवेदिता के मन का रहा-सहा बोझ भी हलका हो गया और वह प्रसन्नचित्त भाव से ज्ञान की अतल गहराइयों में जाने के अवसर खोजने लगीं। अल्मोड़ा छोड़ने से एक दिन पूर्व जब सहयात्री श्री सेवियर्स द्वारा दी गई दावत में उपस्थित थे, तो निवेदिता एक देवदार वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न थीं।

□

शिव और शक्ति से परिचय

सहयात्रियों ने कश्मीर यात्रा का प्रस्ताव रखा तो स्वामीजी सहर्ष मान गए। कुछ शुभचिंतकों की असमय मृत्यु के समाचार से उन्हें मानसिक आघात लगा था, अत: यह यात्रा उनके लिए परिवर्तन का कारण बनी। अल्मोड़ा से कश्मीर की शिक्षाप्रद यात्रा काफी मनोरंजक भी रही। स्वामीजी अपने संन्यास जीवन की भ्रमण कथाओं व श्रीनगर के इतिहास से जुड़े प्रसंगों को रोचक भावपूर्ण शैली में सुनाते, किंतु कश्मीर पहुँचने के कुछ समय बाद ही उनके मन में एकांतवास के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा।

श्रीमती बुल व कुमारी मैक्लाउड किसी व्यक्तिगत कार्य से गुलमर्ग गई थीं। उन्हें लौटने पर पता चला कि स्वामीजी किसी से कुछ कहे बिना, कहीं चले गए हैं। स्वामीजी की ऐसी अनुपस्थिति सभी के लिए चिंता का विषय थी। कुछ दिन पश्चात् वे स्वयं ही सामने आ खड़े हुए तथा पूछने पर बताया कि वे सोनमर्ग के रास्ते अमरनाथ जा रहे थे, किंतु पिघलती बर्फ ने उनका मनोरथ पूरा नहीं होने दिया। मार्ग बंद होने की वजह से उन्हें वापस आना पड़ा।

फिर सभी लोग कश्मीर के ऐतिहासिक व धार्मिक स्थलों की यात्रा पर निकले। इसी यात्रा के दौरान स्वामीजी ने निवेदिता से उनके कार्य के विषय में वार्त्तालाप किया तथा उनके प्रति अपना विश्वास भी प्रकट किया।

उन्होंने सभी शिष्य-शिष्याओं के बीच निवेदिता के उद्देश्य के विषय में विस्तार से चर्चा की। वे इस विषय को भूले नहीं थे, बस अन्य कार्यों के बीच वह छूट गया था। स्वामीजी ने तो स्कूल के कार्य से जुड़े कार्यक्रमों की रूपरेखा तक बना रखी थी।

उन्होंने कहा कि मैं मानता हूँ कि सभी शिष्य-शिष्याएँ ईश्वरीय प्रेरणा से प्रेरित हैं, अत: उन्हें कभी भी अपनी लक्ष्य-पूर्ति में बाधा नहीं आएगी। उन्होंने कहा कि सारा कार्य उचित तथा व्यवस्थित तरीके से होना चाहिए। यदि योजना बनाने के पश्चात् उस पर सच्ची लगन व मेहनत से कार्य किया गया तो निश्चय ही परिणाम भी शुभ ही होगा। वे सब आत्मविश्वास से तो भरपूर हैं, किंतु किसी महती लक्ष्य की पूर्ति के लिए जिस ज्वलंत व दुर्दम्य उत्साह का होना आवश्यक होता है, उसका उनमें अभाव है, अत: सर्वप्रथम अपनी शक्ति व उत्साह को बढ़ाना होगा।

स्वामीजी ने भगवान् शिव से प्रार्थना की कि वे उनके शिष्य-शिष्याओं की रक्षा व कल्याण करें। इस प्रकार निवेदिता ने अपने कार्य के लिए गुरु का आशीर्वाद पा लिया। अब तो वे मानो स्वामीजी की मानस पुत्री बन चुकी थीं। पिता तुल्य गुरु चाहते थे कि निवेदिता अमरनाथ गुफा की यात्रा में उनकी सहभागिनी हो। गुरु के साथ तीर्थयात्रा का सुअवसर पाकर निवेदिता की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। अन्य गुरु भाई-बहनों ने भी उन्हें शुभकामनाएँ दीं। वे सभी सरल-भोले बालकों की तरह उत्साह व प्रसन्नता के सागर में गोते लगा रहे थे।

पहलगाम तक सभी उनके साथ जाने वाले थे, फिर वे वहीं रुककर प्रतीक्षा करेंगे। हजारों की संख्या में तीर्थयात्री अमरनाथ की गुफा के दर्शन करने जा रहे थे। साधुओं की एक टोली स्वामी विवेकानंदजी के दल में शामिल हो गई। रात को भगिनी निवेदिता का तंबू भी सबके साथ लगाया जाने लगा तो साधुओं ने घोर आपत्ति की कि एक विदेशी महिला का साधुओं के बीच क्या काम? स्वामीजी ने अपने तर्कों द्वारा उन्हें समझाने की चेष्टा की, किंतु वे अपने हठ पर अड़े रहे, तब स्वामीजी ने अपना व निवेदिता का तंबू उनसे दूर लगवा लिया, परंतु शीघ्र ही अन्य साधु स्वामीजी व भगिनी निवेदिता के चरित्र, व्यक्तित्व व ज्ञानबल से इतने प्रेरित हुए कि स्वामीजी तथा निवेदिता का तंबू पथ-प्रदर्शक के रूप में सबसे आगे लगने लगा। स्वामीजी ने निवेदिता के हाथों पूरे शिविर में भिक्षा बँटवाई और इस प्रकार सहयात्री साधुओं ने भी निवेदिता को अपना आशीर्वाद दे दिया।

स्वामीजी भी उन्हीं साधुओं के रंग में रँग गए। वे उनकी तरह दिन में एक बार भोजन करते, शांत व निर्जन स्थान में एकांतवास करते, मौन व्रत

रखते, जप-तप और ध्यान में ही अधिकतर समय बिताते।

निवेदिता से स्वामीजी की भेंट बहुत कम होती थी, किंतु वे स्वयं ही तीर्थयात्रियों की दिनचर्या, आस्था, रीति-रिवाजों व परंपराओं का सूक्ष्मता से अध्ययन कर रही थीं। वे स्वयं भी तीर्थयात्रा की पावन व समर्पित भावना से ओत-प्रोत थीं।

निवेदिता के लिए यह यात्रा किसी रोमांच से कम नहीं थी। उन्होंने जीवन में पहली बार हिमनदी देखी। दुर्गम खड़ी चढ़ाइयों को 'जय शिव शंभु! हर-हर महादेव' के जयकारों के साथ पार किया। इसी दौरान राह में मिलने वाली जंगली जड़ी-बूटियाँ व फूल-पत्ते भी उनके आकर्षण व अध्ययन का केंद्र रहे। वे एक विद्यार्थी की भाँति राह में मिलने वाले हर नए पाठ को बड़ी उत्सुकता से ग्रहण करती जा रही थीं।

स्वामीजी इस लंबी यात्रा से काफी क्लांत थे, किंतु वे अपनी अस्वस्थता को तीर्थयात्रा में बाधा नहीं बनने देना चाहते थे। भगिनी निवेदिता व अन्य साधुगण उनके नियमित कठिन कार्यक्रम में विघ्न न डालें, इसी वजह से वे सबसे अलग ही रहते।

अमरनाथ की पवित्र गुफा का मार्ग दुर्गम होने के साथ-साथ घातक भी था। तीर्थयात्री की जरा सी भी लापरवाही उसके प्राण ले सकती थी या उसे किसी भयंकर दुर्घटना का शिकार बना सकती थी; किंतु सभी सकुशल गुफा के समीप जा पहुँचे।

स्वामीजी ने भी दूसरे साधुओं की तरह स्नान के पश्चात् पूरे शरीर में भस्म लपेटकर पवित्र शिवलिंग को साष्टांग दंडवत् किया। शिवलिंग को स्पर्श करने के पश्चात् उन्हें ऐसा लगा मानो शिवजी स्वयं साक्षात् उपस्थित हों, उन्हें इच्छामृत्यु का वर दे रहे हों। स्वामीजी ने कुछ समय तक गुफा में ध्यान लगाया। जब बाहर निकले तो एक अलौकिक आनंद से अभिभूत थे।

उन्होंने कहा, ''यहाँ कुछ भी अनुचित नहीं, असत् नहीं। सब सत्य है, शिव है, सुंदर है। किसी भी धार्मिक स्थल पर मैंने स्वयं को इतना प्रसन्न नहीं पाया, किंतु यहाँ तो चारों ओर पूजा, भक्ति व श्रद्धा का ही साम्राज्य है।''

भगिनी निवेदिता ने भी अमरनाथ गुफा में शिवलिंग के दर्शन किए। वहाँ किसी ने भी आपत्ति व्यक्त नहीं की। सभी पूजा-अर्चना के पश्चात् जलपान के लिए बैठे तो निवेदिता के मन का अवसाद स्वामीजी से छिपा न रहा।

दरअसल, निवेदिता स्वयं को ठगा सा महसूस कर रही थीं। इतनी कष्टसाध्य यात्रा के पश्चात् भी उन्हें शिवलिंग में कोई असाधारण या अद्‌भुत तत्त्व नहीं दिखा। स्वामीजी जिस शिवलिंग के दर्शन कर धन्य-धन्य हो रहे थे, उन्हें तो वह बर्फ के शिवलिंग से अधिक कुछ नहीं लगा। तो क्या स्वामीजी उन्हें वैसी दिव्य दृष्टि नहीं दे सकते थे कि वह भी उस पावन आनंद को अनुभव कर पाती। गुरु ने शिष्या के मनोभाव को पहचाना व उन्हें समझाया कि तीर्थयात्रा के महत्त्व को वह बाद में जान पाएगी। उन्हें यह भूलना नहीं चाहिए कि किसी भी क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। उन्हें भी अपनी इस तीर्थयात्रा का फल अवश्य प्राप्त होगा।

उस समय तो निवेदिता ने मौन भाव से गुरु के शब्द अंगीकार कर लिये, किंतु बाद में उन्होंने स्वयं माना कि उस यात्रा में गुरु ने उन्हें भगवान् शिव को समर्पित कर दिया था। वे अपनी पुत्री को उस महान् ईश्वरीय अंश से जोड़ने का प्रयास कर रहे थे, जिसकी प्राप्ति यूँ ही नहीं हो जाती।

निवेदिता ने जब इस मर्म को जाना-समझा तो वे गुरु के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो उठीं। वे पहलगाम से बाकी शिष्याओं के साथ श्रीनगर लौटे। स्वामीजी तो शिव दर्शन की अनुभूति में सराबोर थे। वे शिव-चर्चा के अतिरिक्त कोई बात ही नहीं करना चाहते थे। श्रीनगर जाते ही स्वामीजी का यह रूप भी बदल गया। वे अधिकतर भगवत चिंतन में लीन रहते। प्राय: अपनी नौका को किसी एकांत स्थान में ले जाकर ध्यानमग्न हो जाते ।

वहीं निवेदिता ने स्वामीजी की आस्था को 'शिव' से 'माँ' के प्रति बदलते देखा। वे माँ काली के साथ एकाकार हो गए थे। इसी मन:स्थिति में उन्होंने क्षीरभवानी जाने का निर्णय ले लिया। वहाँ वे पूरे एक सप्ताह तक कठोर व्रत में रहे। वे एक ब्राह्मण पंडित की कुमारी कन्या का प्रतिदिन पूजन करते। देवी मंदिर के भग्नावशेषों के सम्मुख ध्यानमग्न स्वामी विवेकानंद को ऐसा लगा कि उन्हें भिक्षाटन करके धन एकत्र करना चाहिए और माँ के मंदिर को पूर्ववत् रूप देना चाहिए, किंतु फिर ऐसा लगा कि माँ कठोर शब्दों में उनसे कह रही हों कि जो कुछ भी होता है, उन्हीं की इच्छा से होता है। यदि वे चाहें तो वहाँ आलीशान मंदिर खड़ा हो सकता है, किंतु उनकी इच्छा नहीं है, इसलिए वह मंदिर भग्नावस्था में पड़ा है।

स्वामीजी हतप्रभ हो उठे। उनका अपना अहं ही उन्हें धिक्कारने लगा।

यदि मनुष्य देव के हाथों का खिलौना है तो वह अपनी विद्या, बल, रूप व ज्ञान का इतना घमंड क्यों करता है? उनके मस्तिष्क में यही शब्द बार-बार गुंजायमान होने लगे—''तुम कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं। तुम माँ काली के हाथों परिचालित यंत्र हो। जो भी होता है, वह तो उन्हीं की इच्छा का परिणाम है।''

बस अब तो स्वामीजी माँ काली के चिंतन में इस प्रकार लीन हो गए कि उन्हें कुछ और सूझता ही न था। कर्मयोगी स्वामी विवेकानंद किसी भी विषय में रुचि नहीं लेते थे, अत: उन्हें पहाड़ से मैदान पर ले जाने का प्रबंध होने लगा।

स्वामीजी के चेहरे पर एक अलौकिक तेज विद्यमान था। वे एक निश्छल, भोले-सरल बालक की भाँति बातें करते। स्वभाव का तीखापन और रुक्षता जाने कहाँ चली गई थी। माँ के प्रत्यक्ष दर्शन की अनुभूति के पश्चात् उन्हें यही लगता था कि माँ ही सबकुछ हैं। संसार में सभी व्यक्ति भले हैं। हमारी आँखों में दोष है, हम उनके अंत:करण को नहीं देख पाते।

माँ का स्तुतिगान करते-करते वे प्राय: भाव समाधि में लीन हो जाते। शांति, त्याग व ममता की साक्षात् मूर्ति के सान्निध्य से निवेदिता अभिभूत थीं। ये तो वे गुरुजी नहीं थे, जिन्होंने शिकागो की विश्व धर्मसभा को संबोधित किया था। वे तो मानो कोई ईश्वरीय अवतार थे, जिनके संग-साथ को पाने के लिए, जिनके अमृत वचनों का लाभ पाने के लिए लोग लालायित रहते थे।

जो स्वामीजी निवेदिता पर इतना अनुग्रह रखते थे, वही सबके आकर्षण के केंद्र-बिंदु हैं। बड़े-बड़े गण्यमान्य व्यक्ति उनका आतिथ्य निभाना चाहते हैं। लोग पलक-पाँवड़े बिछाए उनका स्वागत करते हैं। उनके लिए भेंट लाते हैं। उनके चरणों में माथा टेककर अपना जीवन धन्य मानते हैं। वे एक ऐसे आत्म-त्यागी संन्यासी पुरुष हैं, जो सही मायनों में विश्वप्रेमी हैं।

'नोट्स ऑन सम वाण्डरिंग्ज विद स्वामी विवेकानंद' ग्रंथ की प्रस्तावना के अंत में निवेदिता लिखती हैं—''हमने स्वामीजी को भिक्षुकों के समान वस्त्रों में परदेशियों द्वारा तिरस्कृत तथा देशवासियों द्वारा पूजे जाते देखा है। परिश्रम की रोटी, रहने के लिए छोटी सी झोंपड़ी और खेतों तक जाने वाली पगडंडियाँ ही तो उनके जीवन की सच्ची पृष्ठभूमि हैं।''

निवेदिता ने कश्मीर प्रवास के दौरान स्वामीजी को भगवान् शिव और माँ काली के साथ जिस प्रकार एकात्म होते देखा, नि:संदेह उनके जीवन पर

उसका काफी सकारात्मक प्रभाव रहा। वे स्वयं काली माँ को मानने लगी थीं। उन्होंने माँ काली के तीनों रूपों दुर्गा, काली व जगत्-दात्री को सच्चे अर्थों में जाना।

संभवत: भावावेश में स्वामीजी के माँ काली के प्रति एकालाप ने निवेदिता को इस विषय की गहरी पकड़ दी। वे माँ काली की पूजा-अर्चना भी सीख गई थीं। बाद में उन्होंने कलकत्ता में 'माँ काली' पर अनेक भाषण भी दिए। वे स्वयं अपने गुरु की भावदशा की साक्षी थीं। इसलिए उन्होंने कहा, ''ये देवी-देवता काल्पनिक प्रतीक नहीं होते। वे भक्तों को दर्शन देने के लिए मानव रूप अवश्य लेते हैं।''

इस प्रकार इस यात्रा में उनके मन में काली भाव जाग्रत् हुआ और उन्होंने उसे शिव-शक्ति के रूप में भी स्वीकारा।

इस दौरान स्वामीजी द्वारा 'माँ काली' पर लिखी गई निम्नलिखित कविता भी उन्हें विशेष प्रिय थी—

माँ काली

'छिप गए तारे गगन के
बादलों पर चढ़े बादल
काँपकर ठहरा अँधेरा
गरजते तूफान में।
शत-लक्ष पागल प्राण छूटे
जल्द कारागार से
द्रुम-जड़ समेत उखाड़कर,
हर बला पथ की साफ करके
तट से आ मिला सागर
शिखर लहरों के पलटते।
उठ रहे हैं कृष्ण नभ का
स्पर्श करने के लिए द्रुत
किरण जैसे अमंगल की,
हर तरफ से खोलती है
मृत्यु-छायाएँ सहस्रों,
देहवाली घनी काली

आधि-व्याधि बिखेरती
नाचती पागल हुलसकर
आ जननि, आ जननि, आ, आ।
नाम है आतंक तेरा
मृत्यु तेरे श्वास में है,
चरण उठकर सर्वदा को
विश्व एक मिटा रहा है।
समय, तू है सर्वनाशिनी
आ जननि, आ जननि, आ, आ!
साहसी, जो चाहता है दुःख
मिल जाना मरण से,
नाश की गति नाचता है
माँ उसी के पास आई!'

स्वामीजी कलकत्ता लौट गए। शिष्याएँ भारत के कुछ अन्य दर्शनीय स्थलों की यात्रा पर निकलीं, किंतु निवेदिता का मन व्याकुल था। वह उनका साथ छोड़कर पहले ही कलकत्ता लौट गई, जहाँ स्वामीजी रह रहे थे।

□

एक नया अध्याय

कश्मीर प्रवास के पश्चात् कलकत्ता वापसी से निवेदिता के जीवन में एक नया अध्याय आरंभ हुआ। गुरु के विचारों से पूर्णतया सहमत निवेदिता ने अंग्रेजों की वास्तविकता भी जान ली थी।

हुआ यूँ कि जब वे लोग कश्मीर में थे तो स्वामीजी ने उस सुरम्य वातावरण में एक मठ स्थापना का निर्णय लिया। वे वहाँ एक संस्कृत कॉलेज भी बनवाना चाहते थे। कश्मीर के महाराजा ने उन्हें भूमि-खंड के चयन के लिए ही वहाँ बुलवाया था।

शिष्यगण भी चुने गए भूमि-खंड को देख प्रसन्न हो उठे। निवेदिता प्रसन्न थीं, उस स्थान पर साधकों की आध्यात्मिक प्रगति भी होती। स्वामीजी ने सबकी भावना को ध्यान में रखते हुए उस स्थान पर ध्यान-साधना के लिए शिविर लगाने का प्रस्ताव रखा। सभी आनंदित हो उठे।

वे वहाँ महिलाओं के लिए एक अस्थायी मठ भी स्थापित करना चाहते थे, किंतु ब्रिटिश सरकार के एजेंट ने कश्मीर के महाराजा को यह अनुमति देने से इनकार कर दिया। वे नहीं चाहते थे कि स्वामीजी को मठ बनाने के लिए भूमि उपहारस्वरूप मिले। इस घटना से निवेदिता व्यथित हो उठीं और जान गईं कि किस प्रकार अंग्रेज भारतीयों को परतंत्र रखने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ते थे।

स्वामीजी तो इसे माँ की इच्छा मानकर शांत ही रहे, किंतु त्रिमूर्ति बहुत निराश थी। तीनों महिलाओं ने जमीन पर अधिकार पाने के लिए काफी हाथ-पाँव मारे, किंतु असफल रहीं।

निवेदिता यह भी जान चुकी थीं कि अंग्रेज पुलिस ने स्वामीजी की निगरानी के लिए जासूस रख छोड़े हैं। उन्होंने मन-ही-मन तय किया कि यदि कभी अंग्रेजों ने स्वामीजी का विरोध करने की चेष्टा की तो वे अंग्रेज सरकार का विरोध करने वालों में सबसे आगे होंगी। चाहे वह कितनी भी देशभक्त अंग्रेज महिला क्यों न हों, वह अत्याचार व अनाचार का विरोध करने से पीछे नहीं हटेंगी।

धीरे-धीरे निवेदिता जान गई कि किस प्रकार भारतीय आत्मा अंग्रेजों के चंगुल से छूटने को तड़प रही है और स्वतंत्रता किसी भी जाति या देश का जन्मसिद्ध अधिकार होता है।

इंग्लैंडवासियों के भारतीयों के प्रति व्यवहार से वे स्वयं को शर्मिंदा महसूस करतीं। कलकत्ता पहुँचने पर निवेदिता ने कुछ समय श्रीमाँ के घर पर बिताया। वे स्वयं भारतीय महिलाओं के बीच रहकर उनकी परंपराओं व रीति-रिवाजों को समझना चाहती थीं। हालाँकि उन्हें काफी समय बाद इस बात का एहसास हुआ कि श्रीमाँ के घर में उनके साथ रहने का हठ करके उन्होंने कितनी बड़ी भूल की थी। माँ के लिए इस परिस्थिति को सहन करना कितना कठिन रहा होगा। जब उन्हें अलग से कमरा मिल गया तो माँ के आग्रह पर दोपहर का समय वहीं बितातीं।

माँ और निवेदिता के विषय में एक अलग अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है।

निवेदिता अपने जीवन के इस नए अध्याय में स्वयं को एक पवित्र हिंदू ब्रह्मचारिणी की दिनचर्या में ढाल रही थीं। उनके नए घर में पहले-पहल कुछ व्यावहारिक मुश्किलें आईं, किंतु धीरे-धीरे वे उस जीवन-शैली की अभ्यस्त हो गईं।

एक वृद्ध महिला उनके घर का काम-काज करतीं। पूरा घर साफ-सुथरा मिलता। कुशल सेविका अपनी स्वामिनी के प्रत्येक कार्य को भली-भाँति करती, किंतु उसकी एक ही शर्त थी कि निवेदिता उनकी रसोई में किसी भी वस्तु को नहीं छुएँगी।

भारतीय परंपराओं से परिचित निवेदिता के लिए यह शर्त नई नहीं थी। जाने कितने मंदिरों के द्वारों पर जा-जाकर वे बाहर से ही लौट आतीं। क्योंकि वहाँ केवल हिंदू प्रवेश कर सकते थे। दक्षिणेश्वर जाने पर भी वे भीतर नहीं

जा पाती थीं, किंतु उन्होंने कभी भी इस विषय में अपनी ओर से सुधार लाने का प्रयास नहीं किया। वे जब भी किसी के घर जातीं तो इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखतीं कि किसी वस्तु से स्पर्श न हो, अन्यथा वह वस्तु दूषित होगी और परिवार-जन उसका उपयोग नहीं कर पाएँगे।

इधर स्वामीजी प्रयत्न कर रहे थे कि कुछ रूढ़िवादी संस्कारों को छोड़कर निवेदिता हिंदू जीवन पद्धति अपना लें। निवेदिता अपने गुरुजी के शब्दों का अक्षरश: पालन कर रही थीं। वह सदा हिंदू धर्म से जुड़ी मान्यताओं व परंपराओं के प्रति आदर भाव दरशातीं।

उन्होंने कभी इस बारे में शिकायत नहीं की कि उन्हें गैर-हिंदू तथा विदेशी होने के कारण किसी मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं मिला। वे अपनी सीमाएँ जानती थीं। उन्होंने स्वयं कभी उन सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया।

कुछ समय बाद उनके संपर्क में आने वाले व्यक्ति स्वयं ही यह मानने लगे कि निवेदिता जन्म से हिंदू न होने पर भी, उन हिंदुओं से लाख गुना अच्छी हैं, जिनमें भक्ति की लेशमात्र भी भावना नहीं है।

स्वामीजी ने स्वयं कई रूढ़िवादी ढकोसलों का विरोध किया। विजातीय लोगों का बना भोजन करना या उनके साथ भोजन करना भी इनमें से एक था। हम आपको बता ही चुके हैं कि किस प्रकार उन्होंने आरंभ से ही निवेदिता के हाथ का बना भोजन मठ में वितरित करवाया और स्वयं उनके हाथ का बना प्रसाद खाया।

गुरु द्वारा इस प्रशिक्षण की अवधि में निवेदिता ने अनुभव किया कि किस प्रकार श्रीमाँ तथा स्वामी विवेकानंद उन्हें हिंदू समाज में प्रतिस्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। वे गुरु की सद्‌भावना तथा माँ के ममत्व को जानकर विगलित हो उठीं।

□

लक्ष्य की ओर

बागबाजार में श्री बलराम बोस के निवास-स्थान पर कई बैठकें आयोजित की गईं। इन बैठकों में स्कूल की स्थापना के विषय में चर्चाएँ होती थीं। निवेदिता की प्रसन्नता का पारावार न था। उनके लिए काम आरंभ करने का समय आ गया था, जिसके लिए वे जाने कब से प्रतीक्षारत थीं।

स्वामीजी चाहते थे कि नए समाज के निर्माण के लिए हिंदू बालिकाओं की शिक्षा प्रणाली को पारंपरिक तरीके से न चलाया जाए। निवेदिता इंग्लैंड में स्त्री शिक्षा की ख्याति प्राप्त विशेषज्ञा थीं, अत: स्वामीजी उनके विचारों को मान देते थे। वे ऐसी शिक्षा पद्धति का प्रचलन करना चाहती थीं, जो आधुनिक शिक्षा देने के साथ-साथ यथार्थवादी भी हो। पुराने संस्कारों की प्रेरणा से ही नए विचारों को प्रश्रय मिलना चाहिए।

१२ नवंबर को बलरामजी के यहाँ बैठक में कन्या पाठशाला खोले जाने के विषय में विस्तार से चर्चा हुई, जिसमें अनेक गुरुभाई व श्रीमाँ भी उपस्थित थीं। पाठशाला खोलने से पूर्व ऐसी कई सभाएँ आयोजित की गईं और स्वामीजी ने स्वयं पाठशाला से जुड़ी प्रत्येक व्यवस्था में अपना योगदान दिया।

१३ नवंबर को रविवार था, माँ काली की पूजा का दिन, माँ शारदा ने अन्य स्त्री भक्तों के साथ बेलूर मठ में श्रीरामकृष्णदेव की पूजा का आयोजन किया, फिर बोसपाड़ा लेन में पाठशाला के लिए तय स्थान का अपने हाथों से उद्घाटन किया। इस अवसर पर अनेक शुभचिंतक तथा इष्ट मित्र उपस्थित थे।

श्रीमाँ ने प्रार्थना की कि माँ काली का वरद हस्त पाठशाला पर सदा रहे तथा उस पाठशाला से निकली कन्याएँ नारी जाति का नाम उज्ज्वल करें। माँ

शारदा की इस श्रद्धा तथा विश्वास से निवेदिता को बड़ा संबल मिला। बाद में उन्होंने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा—

''उस क्षण उन्होंने भविष्य की शिक्षिता हिंदू नारियों के संबंध में जो भी कहा, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण व शुभ आशीर्वचनों की मैं कल्पना तक नहीं कर सकती।''

प्रारंभ में आस-पड़ोस की कन्याएँ ही पाठशाला में आईं। यह पाठशाला पारंपरिक ढाँचे से बँधी आम पाठशाला नहीं थी, इसे तो स्वामी विवेकानंद और उनकी मानस पुत्री ने निरंतर अपने विचारों, निष्ठा व श्रद्धा का अर्घ्य दिया था।

शीघ्र ही वे कन्याएँ तथा उनकी माताएँ भी निवेदिता के स्नेह-बंधन में बँध गईं। निवेदिता भी पूर्ण उत्साह तथा मनोयोग से छात्राओं को पढ़ाई के अतिरिक्त चित्रकला, मिट्टी से मूर्तियाँ बनाने की कला, सिलाई, बुनाई व कढ़ाई आदि का प्रशिक्षण देतीं।

आस-पड़ोस की स्त्रियों ने भी इस विदेशिनी महिला के हृदय में छिपी ममतामयी नारी को पहचान लिया था। वे उन्हें हर संभव सहायता प्रदान करतीं। ये महिलाएँ स्वभाव से ही लज्जालु व अल्पभाषिणी थीं, किंतु अपने प्रशंसा-पात्र के सेवा-जतन में इन्हें विशेष आनंद आता था।

निवेदिता की यह पाठशाला स्वामी विवेकानंदजी के लिए भी सदा आकर्षण का केंद्र रही। वे इसकी पाठ्य-पुस्तकों, नियमों, पाठ्यक्रम आदि के विषय में प्राय: अपना परामर्श देते।

निवेदिता एक कठोर भिक्षुणी की तरह जीवनयापन करते हुए पाठशाला के कार्यों में निमग्न थीं, किंतु स्वामीजी चाहते थे कि वे सार्वजनिक सभाओं में भाषण देने के साथ-साथ गतिविधियों का विस्तार भी करें।

९ दिसंबर बेलूर मठ के इतिहास में चिरस्मरणीय रहा। उस दिन गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के अस्थिकलश को बेलूर के नवनिर्मित देवालय में प्रतिष्ठित किया जाना था। स्वामीजी ने प्रसन्न भाव से यह शुभकार्य संपादित किया।

पूर्णत: व्यवस्थित रूप से मठ का कार्य चलने लगा। निवेदिता वहाँ नव दीक्षित ब्रह्मचारियों की वनस्पति शास्त्र, चित्रकला, सिलाई व शरीर शास्त्र की कक्षाएँ लेतीं। ब्राह्मसमाज में शिक्षा शास्त्र पर व्याख्यानों के अतिरिक्त वे मिशन की साप्ताहिक सभाओं में भी भाषण देतीं।

इनके अलावा उन्होंने अध्यापन-प्रशिक्षण कक्षा भी चलाई, जिसमें कई प्रतिष्ठित व गण्यमान्य महिलाओं ने प्रशिक्षण पाया। तत्कालीन समाजसुधारक केशव चंद्र सेनजी की सुपुत्रियाँ, जगदीश चंद्र बसु की बहन लावण्य प्रभा बसु तथा टैगोर परिवार से सरला देवी घोषाल तथा इंदिरा देवी चौधरानी निवेदिता की इन कक्षाओं में आईं तथा सदा के लिए परम मैत्री की डोर में बँध गईं।

इसके अतिरिक्त निवेदिता ने 'युवा भारतीय आंदोलन' तथा 'काली पूजा' पर भी भाषण दिए, जिससे उनकी वक्तृत्व-कला की भी धाक जम गई।

□

लोकमाता निवेदिता

मार्च १८९९ में कलकत्ता में प्लेग का सर्वत्र प्रकोप था। मृत्युदेव अपनी बाँहें फैलाए रोगियों की ओर तेजी से बढ़ते जा रहे थे। दूसरों के दु:ख से द्रवित होने वाली निवेदिता ऐसे में शांत कैसे रहतीं। स्वामीजी शहर से बाहर थे। रामकृष्ण मिशन ने प्लेग समिति का गठन किया।

प्रतिदिन सैकड़ों जानें जा रही थीं। महामारी इतनी भयावह थी कि मेहतर भी सफाई से कतरा रहे थे। ऐसी परिस्थिति में रोग और भी तेजी से फैलने लगा। अन्य गुरु भाइयों ने निवेदिता के सेवा-कार्य में हाथ बँटाने का आश्वासन दिया।

जब सफाई के लिए कोई न मिला तो वे स्वयं हाथ में फाबड़ा लेकर, तंग गलियों में सफाई कार्य करने लगीं। उनकी सेवा-भावना से प्रेरित होकर अनेक युवक स्वयंसेवकों के रूप में सामने आ गए और देखते-ही-देखते सफाई अभियान ने जोर पकड़ लिया।

निवेदिता ने समाचार-पत्र में एक विनती-पत्र प्रकाशित करवाया कि जनता प्लेग-पीड़ितों की आर्थिक सहायता के लिए आगे आए। कई अंग्रेज अधिकारी इस मानवतावादी परोपकारी कार्य के लिए आगे आए। उन्होंने आर्थिक सहायता भी प्रदान की।

स्वामीजी के लौट आने से सेवा-कार्यों में तेजी आ गई। निवेदिता अपने भाषणों के माध्यम से युवकों को स्वयंसेवकों के रूप में आगे आने की प्रेरणा देतीं।

सारा कार्य सुव्यवस्थित रूप से हो रहा था। वे अपने प्राणों की परवाह किए बिना दिन-रात रोगियों की सेवा में लगी रहतीं, यहाँ तक कि उन्हें संक्रामक

रोग द्वारा अपनी मृत्यु का भी भय नहीं रहा था।

'स्टडीज फ्रॉम एन ईस्टर्न होम' नामक पुस्तक में निवेदिता ने एक ऐसे घर की चर्चा की है, जहाँ एक मरणासन्न रोगी बालक रहता था, जो कि प्लेगग्रस्त होकर चल बसा था। यहाँ उन्होंने अपने सेवाकार्य का उल्लेख नहीं किया, किंतु एक प्रत्यक्षदर्शी ने बताया था कि किस प्रकार उन्होंने भगिनी निवेदिता को उस बालक की मृत्युपर्यंत सेवा करते देखा था। यद्यपि वे जानती थीं कि बालक नहीं बचेगा, फिर भी उन्होंने उसके घर की साफ-सफाई की उसकी, दिन-रात देखभाल की और क्षण भर के लिए भी अपने घर नहीं गईं।

पर्याप्त विश्राम तथा भोजन के अभाव में उनका शरीर थककर चूर हो गया, किंतु वे अपने लिए समय नहीं निकाल पाईं। ये सभी दिन उन्होंने दूध तथा फल पर गुजारे। कहते हैं कि एक बार प्लेग के मरीज के लिए दवाइयाँ खरीदने के पैसे नहीं थे तो उन्होंने अपने आहार में से दूध की कटौती करके पैसे बचाए थे।

उन दिनों निवेदिता को जितने लोगों ने सेवाकार्य में जुटे देखा था, जो लोग इस कार्य में उनके साथ थे, वे उनकी इस सेवा-भावना को भुला नहीं सकते।

सन् १९०६ में पूर्वी बंगाल में भयंकर बाढ़ आई। निवेदिता के नेतृत्व में रामकृष्ण मिशन ने फिर से राहत कार्य सँभाला। वे जलमग्न गाँवों में घुटनों तक पानी में चलकर या पेड़ के तनों पर बैठकर एक से दूसरे घर तक पहुँचतीं। पीड़ितों को धैर्य बँधाने के साथ-साथ वे उनकी यथासंभव सहायता भी करतीं।

निवेदिता ने सूखा, प्लेग व बाढ़ की विभीषिका में स्वयं देखा था कि किस प्रकार देखते-ही-देखते लाखों व्यक्ति काल के गाल में समा जाते हैं। वे ग्रामीण महिलाओं को उन दुःख भरे क्षणों में प्रोत्साहित करतीं। उन्हें आशा बँधाती कि जल्द ही सब ठीक हो जाएगा।

उनके इसी अद्‌भुत सेवाकार्य से प्रभावित होकर श्री रवींद्रनाथ ठाकुर ने उन्हें 'लोकमाता' की उपाधि से विभूषित किया और कहा था—

''अधिकतर व्यक्ति समय, धन अथवा तन से सेवा करते देखे गए हैं, किंतु निवेदिता दिल से सेवा करती हैं।''

□

निराशा और आशा

प्लेग राहत कार्यों में जुटी निवेदिता बुरी तरह थकने के बावजूद विश्राम नहीं लेती थीं, क्योंकि उनकी पाठशाला की कन्याएँ अपनी दीदी की प्रतीक्षा में रहतीं। वे उन्हें निराश कैसे कर सकती थीं।

निवेदिता की एक अंग्रेज मित्र भारत आकर पाठशाला के कामों में हाथ बँटाना चाहती थी। उन्होंने अपनी महिला मित्र को लिखा कि यदि वह उनकी सहायता के लिए आ सकें तो वे उन्हें आशीर्वाद देंगी और दोनों मिलकर ज्यादा बेहतर तरीके से कार्य कर पाएँगी।

इसी बीच निवेदिता ने स्वामीजी के संन्यासी धर्म को एक नई दृष्टि से पहचाना। वे जान चुकी थीं कि अपने कर्तव्यों को पूरी तरह से निभाने में ही तो सारी धार्मिकता छिपी है।

ठंडे प्रदेश से आई निवेदिता के लिए यूँ भी भारत की गरम जलवायु को सहन करना सहज न था। उस पर वे शरीर को पंखे की हवा तक का सुख नहीं देना चाहती थीं। वे एक सच्ची तपस्विनी की तरह दूध-फल पर गुजारा करतीं, कठोर तख्त पर सोतीं।

उन्होंने एक बार स्वामीजी से पूछा कि आदर्श संन्यासिनी बनने के लिए उन्हें किस-किस क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करनी होगी, तो उत्तर मिला कि जो हो, जैसी हो, वैसे ही अपने मार्ग पर चलती रहो। संभवत: उनके मन में भी पूर्ण ब्रह्मचर्य की दीक्षा पाने की इच्छा जाग्रत् हुई थी।

उन्होंने स्वामीजी के सामने यह इच्छा प्रकट की तो वे मान गए। २५ मार्च को निवेदिता ने नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी का दर्जा पाया। यद्यपि उन्होंने

विधिवत् संन्यास की दीक्षा नहीं ली थी, अत: वे सफेद या हलके रंगों के वस्त्र ही धारण करती थीं।

इधर समाज में प्रतिष्ठित स्त्रियों के साथ संपर्क बढ़ता जा रहा था, किंतु सीमित धनराशि से आरंभ की गई कन्या पाठशाला का अस्तित्व खतरे में था। तत्कालीन नारी समाज से स्वामीजी को सहायता की अधिक आशा नहीं थी। कुँवारी कन्याओं का अल्पायु में ही विवाह कर दिया जाता था। ससुराल वाले अपनी बहू की पढ़ाई-लिखाई पसंद नहीं करते थे और निवेदिता की होनहार छात्राओं की पढ़ाई वहीं ठप्प हो जाती। इस विषय में वे भी विवश थीं।

तब निवेदिता का ध्यान निराश्रित व विधवा महिलाओं की ओर गया, जिन्हें पर्याप्त शिक्षा व प्रशिक्षण के पश्चात् उनके भावी जीवन के लिए तैयार किया जा सकता था; किंतु इससे पूर्व ऐसी महिलाओं के आवास की समस्या हल करना भी आवश्यक था। यहाँ तो विद्यालय चलाना ही भारी पड़ रहा था, महिलाश्रम के लिए धन कहाँ से आता। ऐसी महिलाएँ प्रशिक्षित हो जाने के पश्चात् निवेदिता की कार्यकर्ता के रूप में भी आगे आ सकती थीं।

स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में निवेदिता उल्लेखनीय कार्य कर रही थीं, किंतु धनाभाव में उनके विचारों को मूर्त रूप नहीं मिल पा रहा था। स्वामीजी पश्चिमी देशों की यात्रा पर जाने वाले थे, किंतु ऐसी विकट परिस्थिति में निवेदिता को यूँ ही छोड़ देना भी ठीक नहीं था, अत: तय किया गया कि निवेदिता भी उनके साथ चलें व पश्चिमी देशों से अपने अभियान को जारी रखने के लिए धन एकत्र करें।

स्वामीजी का विचार था कि विदेशों में निवेदिता स्थान-स्थान पर व्याख्यानों द्वारा वेदांत प्रचार में भी सहयोग दे पाएँगी। 'महिला सदन' की कल्पना को यथार्थ में बदलने के लिए उनका विदेश जाना जरूरी था।

स्वामीजी का यह संदेश पाते ही उनका निराश होना स्वाभाविक ही था। उन्हें लगने लगा कि संभवत: वे अपने उद्देश्य को पाने में असफल रही हैं। वे सही तरीके से पाठशाला नहीं चला सकीं, तभी उसे बंद करने की नौबत आन पड़ी है। ऐसे में स्वामीजी ने उन्हें ढाढ़स बँधाया कि उनके काम में, लगन में या परिश्रम में कोई कमी नहीं रही। कई बार मनुष्य परिस्थितियों के आगे विवश हो जाता है।

निवेदिता ने उनसे पूछा कि उनकी एक सखी इंग्लैंड से पाठशाला में

कार्य करने के लिए आना चाहती है। उसके पास कुछ रुपए भी हैं। उनके लौटने तक पाठशाला का कार्य चलाया जा सकता है। उन्हें पूरी उम्मीद थी कि पश्चिमवासी उनके इस महती कार्य के लिए धन की व्यवस्था अवश्य करेंगे।

स्वामीजी ने उनसे कहा कि वे व्याख्यानों से प्राप्त चंदे के अतिरिक्त यूरोप व अमेरिका में ऐसी संस्था भी बना सकती हैं, जिसके सदस्य प्रतिमाह चंदे के रूप में थोड़ी-थोड़ी रकम देते रहें और धन की कमी पूरी हो सके।

इस प्रकार निराशाजनक हालात में स्वामीजी की उत्साहजनक बातों व नवीन योजनाओं ने निवेदिता के मानस में भी आशा का संचार किया और वे विदेश जाने से पूर्व अधूरे कार्य पूरे करने में मनोयोग से जुट गईं।

स्वामीजी बेलूर मठ में एक गृह-उद्योग केंद्र खोलना चाहते थे, जहाँ से निवेदिता के स्कूल की छात्राओं द्वारा तैयार चटनी, अचार व मुरब्बे आदि बाजार में बेचे जा सकें।

निराश्रित महिलाओं व कन्याओं को आत्मनिर्भर बनाने वाली इस योजना का निवेदिता ने स्वागत किया। वे भी जानती थीं कि आत्मनिर्भरता मनुष्य के आत्मविश्वास को दुगना कर देती है।

२० जून, १८९९ को वे अपने गुरु के साथ पश्चिमी देशों की यात्रा पर जाने वाली थीं। १८ तारीख को वे श्रीमाँ का आशीर्वाद लेने गईं। शाम को बेलूर मठ में आयोजित विदाई पार्टी में हिस्सा लिया। २० जून को स्वामी विवेकानंद, स्वामी तूर्यानंद व सिस्टर निवेदिता गोलकुंडा जहाज से रवाना होने लगे, तो स्वयं श्रीमाँ उन्हें विदा करने के लिए उपस्थित थीं। जीवन के इतने महत्त्वपूर्ण समय में श्रीमाँ का वहाँ होना निवेदिता के लिए किसी शुभ शकुन से कम नहीं था।

□

एक सार्थक यात्रा

निवेदिता को स्वामीजी के साथ जो यात्रा करने का सौभाग्य मिला, उसे वे तीर्थयात्रा की संज्ञा देती थीं। ऐसी तीर्थयात्रा, जिसमें गुरु स्वयं अपने मुखारविंद से राह में आनेवाले स्थानों का उल्लेख करते रहे हों, इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों की गाथाएँ सुनाते रहे हों तथा भारतीय संस्कृति के गौरवशाली प्रसंगों का सजीव वर्णन करते रहे हों।

इस यात्रा के दौरान स्वामीजी ने प्रफुल्ल हृदय से भगिनी निवेदिता का ध्यान रखा। वे स्वामी तूर्यानंद व उनके साथ वार्त्तालाप में अधिकतर समय बिताते। सही मायनों में यात्रा काफी शिक्षाप्रद रही। स्वामीजी ने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति व इतिहास आदि की चर्चा से शिष्या का प्रशिक्षण जारी रखा।

भगिनी निवेदिता ने अपनी पुस्तक 'आधी पृथ्वी' में उनके साथ की गई यात्रा को जीवन की एक महत्त्वपूर्ण तथा सर्वश्रेठ घटना कहा है। वे लिखती हैं, ''समुद्री यात्रा में आरंभ से अंत तक अनेक प्रकार की कहानियों व भावनाओं का स्रोत निरंतर प्रवहमान था। क्या मालूम किस क्षण स्वामीजी अपने मुख से सत्य के नए संदेश देने लगें।'' एक दिन उन्होंने कहा, ''देखो, जितने दिन बीत रहे हैं, मैं उतना ही स्पष्ट समझ रहा हूँ कि जीवन की सर्वश्रेष्ठ साधना है 'मनुष्यत्व प्राप्ति'। मैं इसी नवीन उपदेश का जगत् में प्रचार कर रहा हूँ; यदि दुष्ट कर्म करना हो तो उसे भी मनुष्य की तरह करो, यदि दुष्ट ही बनना है तो महान् दुष्ट बनो।''

राह में स्वामीजी कोलंबो उतरे तो वहाँ निवेदिता की भेंट कुमारी हिगिन से हुई। दोनों ने कोलंबो में हिंदू लड़कियों के लिए विद्यालय खोलने की

संभावना पर विचार किया। निवेदिता ने इस विषय को गंभीरता से लिया और इस बारे में भावी योजना भी बना ली।

जहाज पर निवेदिता के लिए सभी सहयात्री परिवार की तरह ही तो थे। एक पादरी दंपती अपने छह बच्चों के साथ पधारे। पति-पत्नी डेक पर खड़े प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप में मग्न रहते, उन्हें बच्चों की कोई चिंता न थी। होती भी कैसे, भगिनी निवेदिता ने बच्चों का भार जो सँभाल लिया था। उन्हें समय पर भात व दूध मिले, इसका ध्यान निवेदिता रख रही थीं। जहाज पर उपस्थित सभी बच्चे इस स्नेहमयी दीदी की मातृत्व-वर्षा से विभोर थे।

स्वामीजी कभी-कभी तो बिलकुल शांत हो जाते, मानो उन्हें किसी से कोई लेना-देना न हो, किंतु कभी-कभी मन पर लगी अर्गला छिटककर खुल जाती और उनकी गुरु-गंभीर वाणी आग उगलने लगती। वार्त्तालाप के विषय भी बदलते रहते। कभी किसी दीन भक्त की विपन्नता या विपदा का वर्णन करते-करते भावुक हो उठते तो आँखों में जल भर आता और कंठ अवरुद्ध हो जाता। ऐसे में वे तत्क्षण विषय बदल देते या उठकर टहलने लगते।

उनका ये रूप तो निवेदिता के लिए एकदम नया था। उन्हें स्वामीजी के व्यक्तित्व के कई छिपे पहलुओं से साक्षात्कार करने का अवसर मिला। स्वयं स्वामीजी भी निवेदिता के इस त्याग को बहुत मान देते थे कि वे अपनी जन्मभूमि त्यागकर उनके देश की सेवा करने आई हैं, अत: वे उन्हें देश, धर्म व रीति-रिवाज आदि की अधिक-से-अधिक जानकारी देना चाहते थे।

निवेदिता को उन्होंने अपने विवेकानुसार कार्य करने की छूट तो दे दी थी, किंतु फिर भी वे उसकी कार्य-सिद्धि के लिए चिंतित रहते। वे अपनी कन्या पाठशाला के लिए धन की व्यवस्था करने हेतु विदेश जा रही थीं।

स्वामीजी प्राय: इस विषय पर संभाषण करते। एक दिन उन्होंने बातों-बातों में कहा कि निवेदिता अपने लक्ष्य तक पहुँचे, ये उनके जीवन के सपनों में से एक है, वे इसे अपनी मृत्यु से पहले साकार रूप में देखना चाहते हैं। गुरुजी के अटूट विश्वास ने निवेदिता के आत्मबल को कई गुना कर दिया। □

परिवार से भेंट

३१ जुलाई को वे इस आनंदमयी यात्रा के पश्चात् लंदन पहुँचे। तिलबुरी बंदरगाह पर उनके भक्तजन व मित्र स्वागत के लिए उपस्थित थे। स्वामीजी की दो शिष्याएँ क्रिस्टीन व श्रीमती फंकी भी आई थीं। गुरुजी के दर्शन की उत्कट इच्छा उन्हें अमेरिका से लंदन खींच लाई थी।

कई भक्तगण चाहते थे कि स्वामीजी अपने दल सहित उनके यहाँ ठहरें, किंतु उन्होंने विंबलडन में निवेदिता के निवास-स्थान पर ठहरने की इच्छा व्यक्त की। निवेदिता मन-ही-मन जानती थीं कि उन्हें अपने परिवार के साथ अधिक-से-अधिक समय बिताने का अवसर देने के लिए ही यह निर्णय लिया गया था। स्वामीजी जाने कैसे उनके मन में छिपे भाव भी पढ़ लेते थे।

विंबलडन में पूरे परिवार ने स्वामीजी का हृदय से स्वागत किया। निवेदिता अपनी माँ, बहन व भाई से मिलीं। अपनी पुत्री के आपादमस्तक परिवर्तन को देख माँ दंग रह गईं। एक ऐसा परिवर्तन जो शारीरिक रूप से या वेशभूषा से ही नहीं था, बल्कि उनकी पुत्री मानसिक रूप से भी भारतीय हो चुकी थी।

निवेदिता का भाई रिचमंड भी स्वामीजी के प्रशंसकों में से था। उन्हें इस बात की खुशी थी कि निवेदिता ने स्वामी विवेकानंदजी जैसे व्यक्ति को गुरु धारण किया। सत्य के पारखी स्वामीजी व सत्यान्वेषी निवेदिता—गुरु-शिष्या की यह जोड़ी अपने आप में एक अलग ही महत्त्व रखती थी।

लंदन में स्वामीजी को अपेक्षित सफलता नहीं मिली तो उन्होंने आगे जाने का निश्चय कर लिया। उनके पुराने मित्र व प्रशंसक श्री स्टर्डी व पुरानी

मित्रमंडली ने उनके आगमन को लेकर कोई खास उत्साह नहीं दिखाया था, जिससे स्वामीजी आहत हुए और न्यूयॉर्क के लिए रवाना हो गए।

दरअसल श्री स्टर्डी के मन में स्वामी विवेकानंदजी के लिए कुछ मतभेद उत्पन्न हो गए थे। वे स्वामी व उनके शिष्यों से न तो मिलने आए और न ही उनके कार्यों के प्रति रुचि दिखाई। उन्होंने निवेदिता को भी एक पत्र में स्वामीजी की निंदा लिख भेजी थी, जिसका निवेदिता ने कड़े शब्दों में प्रत्युत्तर दिया था। अपनी ओर से निंदा का विष उगलने के बाद वे और कुछ नहीं कर सके और स्वामीजी से स्नेह-संबंध तोड़ लिया।

जाने क्यों लोग आध्यात्मिक रूप से जाग्रत् व्यक्तियों के विषय में तरह-तरह की धारणाएँ बना लेते हैं। जब उनकी वही धारणाएँ गलत सिद्ध होती हैं तो वे दूसरे पर दोषारोपण कर देते हैं।

कुमारी मुलर व श्रीमती जॉनसन के साथ भी ऐसा ही हुआ। उन्हें यह सुनकर धक्का लगा कि स्वामीजी रोगग्रस्त हो गए थे। उनके अनुसार, यदि स्वामीजी आध्यात्मिक रूप से सुदृढ़ थे तो उन्हें कोई रोग हो ही नहीं सकता था। इस प्रकार उन्होंने भी स्वामीजी से किनारा कर लिया।

निवेदिता को कुछ समय के लिए विंबलडन में रुकना पड़ा, क्योंकि उनकी बहन 'मे' का विवाह था। 'मे' विवाह में अपनी बहन की उपस्थिति के विचार से प्रसन्न हो उठी और पूरे परिवार ने धूमधाम से विवाह संपन्न किया।

□

निष्काम कर्मयोगिनी

अमेरिका में वे स्वामीजी के पास पहुँचीं तो वे उन दिनों 'रिजले मैनर' में ठहरे हुए थे। लेगेट परिवार ने बड़े स्नेह से स्वामीजी व उनके शिष्यों की अभ्यर्थना की। सभी एक बार फिर स्वामीजी का सान्निध्य लाभ पाने लगे, किंतु निवेदिता को उस वैभवपूर्ण वातावरण में उलझन सी होने लगी। उन्होंने स्वयं को हिंदू तपस्विनी के रूप में ढाल लिया था। वे एकांतवास तथा अध्ययन-मनन के लिए व्याकुल थीं।

स्वामीजी ने उन्हें एकांतवास की आज्ञा दी तथा श्वेत परिधान धारण करने की उनकी इच्छा को भी स्वीकृति दे दी। वह स्कूल के लिए निधि जमा करने के कार्य में जुट जाना चाहती थीं। इसके साथ ही उन्हें अमेरिका की जनता को हिंदू धर्म के आदर्शों से भी परिचित करवाना था। स्वामीजी ने उन्हें आशीर्वादस्वरूप एक कविता भेंट की, जिसका शीर्षक था 'शांति'!

निवेदिता ने उस एकांतवास के काल में 'काली द मदर' नामक पुस्तक पूरी की, जिसे उन्होंने भगवान् वीरेश्वर को समर्पित कर दिया। वे रिजले मैनर के बाहर छोटे से घर में रह रही थीं। स्वामीजी ने उन्हें निष्काम कर्मयोग की शिक्षा दी। वे उन्हें समझाते कि आदर्श कर्मयोगी कैसा होना चाहिए। उन्होंने चरम सिद्धि पाने वाले संत शुक का उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

अमेरिकी समाज में हिंदू स्त्री जाति की विशिष्ट छवि निर्माण का उत्तरदायित्व भी उन्हीं पर था। स्वामीजी ने न्यूयॉर्क जाने से पूर्व उन्हें शुभकामनाएँ दीं और कहा, ''जब भी कोई नया कार्य आरंभ करो या किसी यात्रा पर जाओ तो सबसे पहले माँ दुर्गा का नाम लिया करो।''

निवेदिता ने ये शब्द गाँठ बाँध लिये। माँ दुर्गा का नाम हमेशा उनके होंठों पर रहने लगा। निवेदिता श्रीमती बुल की पुत्री ओलिया के साथ शिकागो के लिए चल दीं।

उन्होंने वहाँ प्राथमिक स्कूल के बच्चों को भारत के विषय में व्याख्यान देकर शुरुआत की। निवेदिता बालमनोवृत्ति की परिचायक थीं, उन्हें पता था कि वे किसी पहले से प्राप्त ज्ञान के साथ नई जानकारी को सरलता से संबद्ध कर सकती हैं, इसलिए पहले उन्होंने जीसस-क्राइस्ट के विषय में बात की, जो कभी उन्हें भी विशेष रूप से प्रिय रहे थे, फिर भारत की महान् विभूतियों के बालरूपों व बाल भक्तों जैसे ध्रुव, प्रह्लाद, बालकृष्ण आदि के विषय में बताया। भारत की भौगोलिक स्थिति व जलवायु आदि की जानकारी भी दी। बाल श्रोताओं का उत्साह दर्शनीय था। उन्हें पहली बार भाषणकर्त्री के रूप में एक ऐसा वक्ता मिला था, जो उन्हीं के मानसिक स्तर पर आकर बात करने की कला जानता था।

आगे की योजनाएँ स्पष्ट नहीं थीं। उन्होंने तय किया कि जिस ओर से सकारात्मक संकेत प्राप्त होंगे, उसी दिशा में कदम रखती जाएँगी। फिर उन्होंने धर्म-प्रचारकों की मंडली के सामने 'भारत में धार्मिक जीवन' व 'भारतीय महिलाओं की स्थिति' पर व्याख्यान दिए।

'भारत की प्राचीन कला' उनकी व्याख्यानमाला का अगला विषय था। इस भाषण द्वारा चंदा एकत्र करने की योजना थी। निवेदिता इस विषय में खास जानकारी नहीं रखती थीं, किंतु ऐन मौके पर स्वामीजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भाषण की तैयारी में मदद की और निवेदिता का भय जाता रहा। व्याख्यान से निवेदिता को ५०,००० पौंड की राशि प्राप्त हुई। वे इस अप्रत्याशित सफलता से उत्साहित हो उठीं।

इसी दौरान उन्हें स्वामीजी के कई प्रशंसकों व सहयोगियों से मिलने का अवसर भी मिला। स्वामीजी जॉर्ज हेल्स के परिवार के यहाँ ठहरे हुए थे। निवेदिता को उस परिवार से परिचित करवाने के बाद वे वहाँ से आगे चल दिए।

□

कटु वास्तविकता

निवेदिता को औपचारिक व अनौपचारिक रूप से अनेक व्यक्तियों से मिलना पड़ता था। वे लोग बेतुके प्रश्न पूछ-पूछकर उनके धैर्य की परीक्षा लेने लगते। ऐसे आगंतुकों में महिलाओं की संख्या अधिक होती थी। अपने को सर्वश्रेष्ठ जाति का वंशज मानने वाली ये स्त्रियाँ डींगे हाँकने के सिवा कुछ नहीं करती थीं।

जब आर्थिक सहायता या किसी भी प्रकार का योगदान देने का प्रसंग आता तो वे उठकर चल देतीं। यद्यपि निवेदिता को इस दौरान कार्य में रुचि लेने वाली महिलाएँ भी मिलीं, किंतु यही पर्याप्त नहीं था। वे ऐसे योग्य व्यक्तियों की प्रतीक्षा में थीं, जो उनके तथा स्वामीजी के विचारों को मान देते और तत्परता से सहायता के लिए हाथ बढ़ाते।

इधर स्वामीजी को भी हर ओर से आशातीत परिणाम नहीं मिल रहे थे। पूर्व परिचित शुभचिंतक भी साथ छोड़ रहे थे। उन्हें वेदांत के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ मठ निर्माण के लिए धन जमा करना था, किंतु दोनों ही कार्य दुष्कर होते जा रहे थे।

निवेदिता स्वभाव से ही संवेदनशील थीं, अत: जरा सी भी अवज्ञा या अपमान की बू पाते ही वे हतोत्साहित हो जातीं। आगंतुक बड़ी-बड़ी बातें बनाते, निवेदिता को घंटों वार्त्तालाप में उलझाए रखते, किंतु अंत में सहायता राशि का जिक्र आते ही विदा लेने के लिए खड़े हो जाते।

ऐसी विषम परिस्थितियों में स्वामीजी के उपदेश, व्यक्तिगत उदाहरण व पत्र ही उनका संबल बने। वे स्वयं अपने गुरु के मानसिक व शारीरिक संघर्ष

की साक्षी रही थीं। जीवन में ध्येय पूर्ति के लिए ठोकरें तो खानी ही पड़ती हैं। यदि दूसरों के लिए कुछ करने की ठान ही ली हो तो व्यक्तिगत सुख-दु:ख की सीमाओं से ऊपर उठकर हर प्रकार का कष्ट सहना ही पड़ता है।

स्वामीजी ने उन्हें उपदेश दिया कि दूसरों का कल्याण चाहनेवाला न तो किसी की निंदा करता है और न ही समालोचना। वह दूसरों की परवाह किए बिना अपनी राह पर बढ़ता रहता है। उसने दूसरों का उद्धार करने का मार्ग चुना है—यह जरूरी नहीं कि दूसरे भी उसके इस आनंद के सहभागी होंगे।

निवेदिता चाहती थीं कि शिकागो में एक समिति की स्थापना हो, ताकि उनके द्वारा शुरू किया गया कार्य चलता रहे। उन्होंने मैरी हेल से आग्रह किया कि वे डेट्रायट समिति का मंत्री पद सँभाल लें। हेल परिवार स्वामीजी से बहुत स्नेह रखता था, अत: निवेदिता को पूरी उम्मीद थी कि मैरी हेल उन्हें अपेक्षित सहयोग अवश्य देंगी।

मैरी से निवेदिता को आग्रह का प्रत्युत्तर मिला—''मैं या मेरा परिवार आपके किसी भी कार्य से कोई संबंध नहीं रखना चाहता, अत: कृपया आप किसी और से सहायता माँगें।''

निवेदिता ऐसा नकारात्मक उत्तर पाकर सन्न रह गई। यदि स्वामीजी के आत्मीय परिवार की ओर से ऐसी प्रतिक्रिया मिली थी तो दूसरों के बारे में क्या अपेक्षा की जा सकती थी।

उस दिन निवेदिता को लगा कि लोग अब भी स्वामीजी व उनके कार्य को एकरूप नहीं मानते। वे तो स्वामीजी का ही कार्य कर रही थीं। यदि स्वामीजी के समर्थक उन्हें सहयोग नहीं देते तो इसका अर्थ है कि उन्हें इनसे भिन्न माना जाता है।

यह जानकर उनका मन आहत हो उठा। यदि किसी अपरिचित की ओर से ऐसी प्रतिक्रिया मिली होती तो वे स्वयं को सांत्वना दे लेतीं कि संसार में सभी व्यक्ति दूसरों का कल्याण चाहनेवाले नहीं होते, किंतु ये तो उनके स्वजन थे, हितैषी थे, शुभचिंतक थे।

निवेदिता स्वयं को उस विदेश में एकाकी व असहाय पा रही थीं। कुमारी मैक्लाउड उनके सुख-दु:ख की साथी थीं। उन्होंने पत्र द्वारा अपनी पीड़ा प्रकट की तो उनका उत्तर मिला। उन्होंने निवेदिता को प्रेरणा दी कि उन्हें दूसरों के सहारे पर आश्रित रहने के बजाय आत्मनिर्भर बनना होगा।

''व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता होने के बावजूद वे दूसरों पर आश्रित क्यों हैं? उन्हें अपने लिए नए श्रोता, नए समर्थक, नए मित्र व नए आत्मीय जुटाने होंगे। स्वतंत्र रूप से स्वामीजी की विचारधारा फैलानी होगी।''

कुमारी मैक्लाउड ने बताया कि जब श्री रामकृष्णदेव जीवित थे तो लोग उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद को सुनने के लिए इतने उत्सुक या व्यग्र नहीं होते थे, क्योंकि उन्हें तो रामकृष्णदेव के दर्शन व श्रवण लाभ से मतलब था।

अब वह समय आ गया है कि निवेदिता भी इस कटु वास्तविकता से परिचित हो जाए तथा स्वामीजी द्वारा दिए गए कार्य को अपने तरीके से आगे बढ़ाए। हर नई योजना व कार्य के निष्पादन का तरीका भी अलग ही होता है। उसके लिए पुराने साधन या माध्यम पर्याप्त नहीं होते। उन्हें स्वामीजी के दर्शन व साथ का अवसर मिला—यही जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य जानें। स्वामीजी का विश्वास व स्नेह तथा माँ काली का आशीर्वाद उनके साथ रहेगा।

इन शब्दों ने निवेदिता के आहत मन को शांति प्रदान की और फिर दुगने उत्साह से कार्य करने लगीं।

□

आंतरिक संघर्ष

पश्चिमी देशों का यह प्रवास कई प्रकार के अनुभवों से समृद्ध रहा। कहीं फूलमाला से स्वागत करनेवाले मिलते तो कहीं उपेक्षा करनेवाले खड़े थे। निवेदिता डटकर सामने आनेवाली हर चुनौती का सामना कर रही थीं। कुछ स्थानों से चंदे व सहयोग का आश्वासन मिला, किंतु डेट्रायट में तो परिस्थितियाँ ही अलग निकलीं।

वहाँ चर्च के प्रभाव में रहने वाली महिलाओं ने आलोचनात्मक प्रश्नों की वर्षा कर दी। उन कट्टर व मंदमति महिलाओं को कुछ भी समझाना ऐसा ही था जैसे भैंस के आगे बीन बजाना। वे भारत के विषय में कई तरह की गलत धारणाओं व पूर्वग्रहों से ग्रस्त थीं।

निवेदिता ने उनके प्रश्नों के उत्तर देने का हर संभव प्रयास किया। यद्यपि कड़वी आलोचना के घूँट पीना सरल नहीं था, पर वे गुरु की इच्छानुसार नीलकंठ बनकर सबकुछ सहती रहीं।

वे शिकागो के अनेक विद्यालयों में गईं। वहाँ एक शिक्षाशास्त्री श्री पारकर लड़कियों को शिक्षिका का प्रशिक्षण देने के लिए विद्यालय खोलना चाहते थे। कलकत्ता में निवेदिता संतोषिनी के रूप में अपनी भावी सहयोगिनी देखती थीं। उन्हें लगा कि यहाँ संतोषिनी को प्रशिक्षण पाने का अवसर मिल सकता है, किंतु भारत से सूचना मिली कि उनकी वह छात्रा विवाह होने के बाद स्कूल छोड़ चुकी है।

कैंब्रिज में वे श्रीमती बुल के यहाँ ठहरीं। वहीं उनकी भेंट बिपिनचंद्र पाल से भी हुई। निवेदिता के प्रयासों से अमेरिका में रामकृष्ण सहायता संघ की स्थापना

हुई। श्रीमती लेगेट अध्यक्षा बनीं। श्रीमती बुल ने अवैतनिक राष्ट्रीय सचिव का कार्यभार सँभाला। इस प्रकार अलग-अलग शहरों में इसकी शाखाएँ खोली गईं।

श्रीमती लेगेट ने निवेदिता को चंदे के रूप में बड़ी धनराशि दान दी। समिति ने रामकृष्ण स्कूल की परियोजना पर पुस्तक तैयार की। निवेदिता ने अपनी सभी कल्पनाओं को इस पुस्तक में व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत किया। महान् पौराणिक भारतीय पात्रों की कहानियाँ लिखने के अतिरिक्त वे अपनी पुस्तक 'काली द मदर' को प्रकाशित करवाने का भी प्रयास करती रहीं। जमायका में उन्होंने 'पूर्वी देशों के प्रति हमारा दायित्व' नामक विषय पर व्याख्यान दिया।

विरोधों व बाधाओं का दौर अभी थमा नहीं था, किंतु स्वामीजी के प्रोत्साहन के कारण वे निरंतर संघर्षरत रहीं। इसी बीच निवेदिता को शिकागो में एक बार फिर से स्वामीजी के प्रवचन सुनने का अवसर मिला। उन्हें लगा कि मानसिक जड़ता समाप्त हो गई और उस बौद्धिक क्लांति से विश्राम पाने के बाद वे नई उमंग से कार्य करने लगीं। निवेदिता को ब्रिटेन के एक समाजशास्त्री व विचारक प्रोफेसर ने पेरिस आने का निमंत्रण दिया, ताकि वे पेरिस एक्सपोजीशन यूनिवर्सल के अवसर पर होने वाले धर्म-इतिहास सम्मेलन में उनकी सहायता कर सकें। स्वामी विवेकानंद व श्रीमती लेगेट को भी निमंत्रण दिया गया था। निवेदिता ने पहले भी श्री गेडेस के व्याख्यान पढ़े थे और उनकी प्रशंसा भी की थी। वे सहर्ष सहायता के लिए आगे आईं, किंतु कुछ ही समय में उन्हें लगने लगा कि वहाँ किसी रचनात्मक विचारों से परिपूर्ण महिला की नहीं बल्कि एक सहायिका की आवश्यकता थी। वहाँ उनके विचारों को प्रस्तुत करने की भी कोई गुंजाइश नहीं दिख रही थी, अत: वे उस काम से पीछे हट गईं, किंतु श्री गेडेस से उनकी मित्रता यथावत् बनी रही।

बाद में उन्होंने 'वेब ऑफ इंडियन लाइफ' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में प्रोफेसर गेडेस के प्रति आभार भी व्यक्त किया। उसी दौरान निवेदिता का परिचय डॉक्टर जगदीश चंद्र बोस व उनकी धर्मपत्नी से हुआ। निवेदिता ने उनके कार्यों में गहरी रुचि दिखाई और वे उस परिवार से हमेशा के लिए जुड़ गईं।

पेरिस में सबकुछ ठीक चल रहा था, किंतु निवेदिता आंतरिक संघर्ष से घिरती जा रही थीं। हाल ही में प्रोफेसर गेडेस से हुए वैचारिक मतभेद के बाद उनका मन बहुत व्याकुल था और शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा था।

□

आशीर्वचन

इधर स्वामीजी भी उनकी ओर से कुछ उदासीन हो चले थे। अनेक योजनाएँ मन में लिये निवेदिता जिस प्रेरणा व प्रोत्साहन की प्रतीक्षा में थीं, वह कहाँ था? स्वामीजी की ओर से किसी भी प्रकार की प्रेरणा का अभाव देख वे दुविधा में थीं कि कहीं वे लक्ष्य से भटक तो नहीं रहीं।

वहीं दूसरी ओर स्वामीजी स्वयं को लौकिक बंधनों से परे कर रहे थे। वे लाभ-हानि व यश-अपयश की सीमाओं से भी परे जाना चाहते थे। उनके तत्कालीन पत्रों से उनकी ऐसी मन:स्थिति का परिचय मिलता है। उन्होंने एक बार लिखा था—''जीवन के प्रति आकर्षण मन से दूर होता जा रहा है। अब केवल प्रभु की मधुर वाणी ही सुनता है। मैं आया प्रभु, मैं आया! हाँ, मैं आता हूँ। मेरे सामने निर्वाण है। यह शांति का वो अनंत सागर है, जहाँ न पानी की हिलोरें हैं न थपकियाँ। मुझे हर्ष है कि मैं निर्वाण रूपी शांति सागर में विलीन होने जा रहा हूँ। न मैंने किसी को बंधन में छोड़ रखा है, न मैं स्वयं किसी बंधन में हूँ, चाहे इस शरीर की मृत्यु से मैं मुक्ति पाऊँ या शरीर के रहते मुक्त हो जाऊँ, जो मनुष्य सदा के लिए चला गया—वह कभी वापस नहीं आएगा।''

निवेदिता ने तो स्वतंत्र रूप से चलना सीखा ही था। अभी तो उन्हें उस नन्हे बालक की भाँति प्रोत्साहन चाहिए था, जो दो डग भरने के बाद पिता की ओर देख मुसकराता है कि वे उसे देख रहे हैं या नहीं, पिता का संरक्षण ही उसे और दो कदम भरने को प्रेरित करता है। यहाँ निवेदिता के धर्मपिता ने पुत्री को जगत् रूपी मंच पर अपनी भूमिका निभाने के लिए अकेला छोड़ दिया था।

श्रीमती बुल के आमंत्रण पर निवेदिता लेनियॉन के निकट पेरोस-गुहरिक चली गईं। उन्हें वहाँ के शांत एकांतवास में आत्मविश्लेषण का भरपूर अवसर मिला। उन्हें लगा कि उनकी सीमित कार्यक्षमता ही स्वामीजी के उदासीन होने का कारण है। इसी उद्वेग में वे उन्हें पत्र भी लिख बैठीं। प्रत्युत्तर में स्वामीजी ने उन्हें स्पष्ट किया कि उन्होंने मठ की सभी व्यवस्थाओं व कार्यों से मुक्ति पा ली है। वे न तो किसी का प्रतिनिधित्व करेंगे और न ही किसी का उत्तरदायित्व लेंगे। निवेदिता स्वेच्छा से अपने कार्यों को किसी भी रूप में जारी रख सकती हैं। वे इस विषय में पूर्णतया स्वतंत्र हैं।

इन शब्दों से तो निवेदिता की मानसिक व्याकुलता और भी बढ़ गई। सदा प्रेरित करनेवाले गुरु के शब्दों से उनकी विरक्ति का पता चल रहा था। शंका-कुशंका से घिरी निवेदिता के लिए श्रीमती बुल बेहद चिंतित थीं। उन्होंने सोचा कि स्वामीजी से प्रत्यक्षत: मिलने के बाद वे सँभल जाएँगी। उन्होंने इसी आशय से स्वामीजी को बुलवा भेजा।

भला स्वामीजी 'धीर माता' का कहा कैसे टालते! उन्होंने वहाँ पहुँचते ही निवेदिता के निराधार भय व शंकाओं का निवारण किया और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे आज भी उनसे पुत्रीवत् स्नेह रखते हैं, केवल इतना चाहते हैं कि निवेदिता अपने कर्तव्यों को अपने बलबूते पर निभाए।

इस अवसर पर उन्होंने निवेदिता को 'आशीर्वचन' नामक कविता सुनाई तथा भावी कार्यों के लिए शुभकामनाएँ भी दीं। कविता का भावार्थ था—

मातृ हृदय व योद्धा की संकल्प-शक्ति
मलय पवन का मधुर मार्धुय
आर्यवेदी पर दीप्त उन्मुक्त लौ
का पवित्र सम्मोहन व शक्ति;
ये सभी तथा अन्य अनेक गुण
तुम्हें सहज ही आज प्राप्त हों।
भारत माँ के भावी सपूतों की गूँजे तुममें वाणी,
सेविका, सखी और बनो तुम
मंगल रूपी कल्याणी!

□

धर्मपिता के आदर्श

निवेदिता ने प्रसन्न हृदय से स्वामीजी से विदा ली। वे पेरिस के बाद कई अन्य स्थानों की यात्रा करते हुए भारत लौट आए। निवेदिता पूरे मन-प्राण से धर्मपिता के आदर्शों के साथ एक बार फिर से जीवन-रूपी संघर्ष का सामना करने को प्रस्तुत थीं।

सन् १९०१ के जनवरी तथा फरवरी माह में उन्होंने लंदन के श्रोताओं के सम्मुख 'भारत में आध्यात्मिक जीवन', 'भारतीय नारी का आदर्श' तथा 'भारत में इंग्लैंड की असफलता' जैसे विविध विषयों पर व्याख्यान दिए। स्कॉटलैंड में भी कुछ कार्यक्रम आयोजित हुए। अब उनके भाषणों में प्राय: भारत की राजनीतिक दशा की भी चर्चा होने लगी थी।

निवेदिता लंदन में ही श्रीमती बोस से मिलीं। डॉ. बोस बीमार थे। रोगमुक्ति तक वे अपनी पत्नी व श्रीमती बुल के साथ निवेदिता के यहाँ ठहरे। उनका यह बंधन अटूट मैत्री में बदल गया।

लंदन में श्रोताओं ने निवेदिता का हार्दिक स्वागत किया। जो जगत कुमारी नोबल को पहचानता था, वही अब उन्हें भगिनी निवेदिता के रूप में जानने लगा था। अब वे भारत लौटने को उत्सुक थीं, किंतु अभी कई अधूरे काम निबटाने थे। वे विविध विषयों पर लेखन में व्यस्त थीं। 'द वेब ऑफ इंडियन लाइफ' पुस्तक के पहले कुछ अध्याय वहीं लिखे गए।

'रिव्यू ऑफ रिव्यूज' के संपादक श्री विलियम स्टेड ने उनसे डॉ. जगदीश चंद्र बोस के जीवन का रेखाचित्र लिखने का आग्रह किया। नॉर्वे में श्री ओल बुल की कांस्य प्रतिमा का अनावरण होना था, अत: वे श्रीमती बुल

के आग्रह पर तीन माह तक नॉर्वे में रहीं।

वहाँ एक तंबू में उनके रहने का प्रबंध था। प्रकृति के सुरम्य वातावरण ने मन व शरीर को एक अपूर्व शांति व ताजगी प्रदान की। श्रीमती सेवियर्स व बोस परिवार आदि कई हितचिंतकों ने उनके साथ वहाँ थोड़ा समय व्यतीत किया, फिर वे सितंबर में इंग्लैंड के लिए चल दीं। निवेदिता भी एक यायावर की भाँति एक से दूसरे स्थान पर घूमती रहतीं। कहीं आराम और सुख मिलता तो कहीं कष्टदायक परिस्थितियाँ, किंतु सुख-सुविधा का कोई भी आकर्षण उन्हें बाँध नहीं पाता था। उक्त स्थान पर कार्य समाप्त होते ही वे दूसरे प्रांत में चली जातीं। एक सच्चे यायावर की तरह 'चलते रहना' ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था।

निवेदिता अपने धर्मपिता के आदर्शों का पालन तो कर रही थीं, किंतु जाने क्यों उन्हें भीतर-ही-भीतर अपने अंदर एक विचित्र सा परिवर्तन आता दिख रहा था। उन्हें लगने लगा था कि हिंदू धर्मतत्त्व के साथ देश को जाग्रत् करने की प्रक्रिया लंबी है। पहले उन्हें राष्ट्रीय जागरण के लिए प्रयास करने होंगे, ताकि देश आजादी की खुली हवा में साँस ले सके। कोई परतंत्र राष्ट्र अपनी आध्यात्मिक, सामाजिक या राष्ट्रीय उन्नति के विषय में सोच ही कैसे सकता था?

पाठक जानते ही हैं कि अंग्रेजों के प्रति उनकी विचारधारा पहले ही बदल चुकी थी। इस समय कुछ और ऐसी घटनाएँ घटीं, जिन्होंने आंग्ल प्रेम की धारा को ही सुखा दिया।

श्री बोस के कार्य को सम्मान देने के बजाय इंग्लैंड ने जिन कटु शब्दों में उनकी निंदा की, उनका मनोबल तोड़ने का प्रयास किया, उससे निवेदिता और भी व्यग्र हो उठीं। इंग्लैंड में वे कई नेताओं से मिलीं, उन्होंने अपने वार्त्तालाप से स्पष्ट कर दिया कि वे भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के विषय में कोई रुचि नहीं रखते।

कई प्रवासी भारतीयों से भी मिलने का अवसर मिला। उन्होंने भगिनी निवेदिता को सूचना दी कि किस प्रकार भारत में अंग्रेजों का दमनचक्र तेजी से चल रहा है। निवेदिता मन-ही-मन सोचा करतीं कि यदि भारत स्वतंत्र होता तो अपने प्रतिभाशाली वैज्ञानिक डॉ. बोस के उल्लेखनीय कार्यों का मूल्यांकन कर उन्हें मान देता, किंतु अब वही डॉ. बोस अपमान के कड़वे घूँट पी रहे थे।

इंग्लैंड के प्रति आदर लगभग समाप्त हो चला था। निवेदिता स्वतंत्रता विषयक कल्पनाओं के साथ आगे तो बढ़ रही थीं, किंतु मन में संदेह भी था कि कहीं स्वामीजी उनके विचारों को अस्वीकृत न कर दें।

वे प्राय: माँ काली से प्रार्थना करतीं कि उनके व धर्मपिता के बीच जुड़ा मानसिक सेतु यूँ ही बना रहे और वे निरंतर उनसे प्रेरणा पाती रहें। वे स्वामीजी के विचारों की परिधि से बाहर न जाएँ और स्वामीजी भी राजनीतिक कार्यक्षेत्र में उनके पदार्पण को अन्यथा न लें।

इस दौरान वे लंदन के बेथनी सिस्टर्स का घर देखने गईं। वहाँ के पवित्र तथा भक्तिमयी वातावरण को देख उनका मन बोसपाड़ा लेन में माँ शारदा के पास जा पहुँचा। स्वामीजी भारत लौटने के बाद भी उनसे निरंतर पत्रों द्वारा संपर्क बनाए हुए थे। मठ के निर्जन एकांतवास से प्रसन्न होकर उन्होंने भगिनी निवेदिता को पत्र लिखा—

''आनंद से मुखरित तथा कर्मव्यस्त पेरिस, गंभीर प्राचीन कुस्तुनतुनिया, जगमगाता हुआ नन्हा एथेंस, पिरामिड से सुशोभित काहिरा—इन सभी स्थानों को मैं पीछे छोड़ आया हूँ और अब मैं यहाँ तट पर गंगावर्ती मठ में अपनी छोटी सी कोठरी में बैठकर यह पत्र लिख रहा हूँ। चारों ओर कितनी शांति और निस्तब्धता छाई है। विशाल नदी उज्ज्वल सूर्य किरणों में नृत्य कर रही है।''

इस प्रकार भगिनी निवेदिता को विदेश प्रवास में भी नाना साधनों व संपर्कों से भारत के विषय में सभी समाचार मिलते रहे।

□

कर्मस्थली की ओर

निवेदिता फरवरी १९०२ में श्रीदत्त व श्रीमती बुल के साथ भारत लौटीं। मद्रास में उनका सार्वजनिक रूप से स्वागत किया गया। 'हिंदू' के संपादक श्री जी. सुब्रह्मण्यम अय्यर भी सभा में उपस्थित थे। मद्रास अपने प्रिय स्वामी विवेकानंदजी की मानस-पुत्री का आभारी था, जो विदेशों में बिना किसी सहयोग के भारत की विजय-पताका फहराकर लौटी थीं।

स्वागत भाषण में निवेदिता ने इस बात पर बल दिया कि भारत को किसी पश्चिमी मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही अपनी अर्वाचीन संस्कृति के साथ पूर्णतया सक्षम है। उसे अपनी हीनताओं या राष्ट्रीय रूढ़िताओं के लिए किसी भी तरह से लजाने की आवश्यकता नहीं है, फिर उन्होंने भारतीय स्त्रियों के लज्जा, क्षमाशीलता, दया, त्याग, स्नेह व करुणा आदि गुणों की प्रशंसा करते हुए उन्हें ऊँचा उठाने के लिए कहा।

स्वामीजी उन दिनों बनारस में थे। पुत्री के स्वागत समारोह की चर्चा सुनकर उनका हृदय आनंदित हुआ। उन्होंने पत्र में श्रीमती बुल को लिखा— ''मैं भारत में एक बार फिर से अपनी माँ व प्रिय पुत्री का स्वागत करता हूँ।''

निवेदिता की घर वापसी कई मायनों में अलग थी। इस प्रकार वे एक नए दृष्टिकोण व मानसिकता के साथ लौटी थीं। मानो पिता की उँगली पकड़कर चलने वाले बालक ने नन्हे-नन्हे कदमों से स्वयं चलना सीख लिया था।

उनके भाषणों में छिपी आँच अंग्रेज सरकार तक भी पहुँच गई। यद्यपि इसमें आपत्तिजनक कुछ भी नहीं था, किंतु आशंकित अंग्रेज सरकार दूध से जली थी, इसलिए छाछ भी फूँक-फूँककर पीती थी। उसके संशय की एक

और वजह यह थी कि राजनीतिक नेताओं का निवेदिता के घर में आना-जाना लगा रहता था। इस दौरान गांधीजी भी एक सम्मेलन के दौरान कलकत्ता आए हुए थे, वे भी निवेदिता से मिले।

निवेदिता ने स्वामीजी को पत्र लिखकर विद्यालय फिर से आरंभ करने की अनुमति चाही तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि जिस प्रकार रामकृष्णदेव ने उनको सहयोग दिया है, उसी प्रकार निवेदिता का भी मार्गदर्शन करेंगे।

स्वामीजी की अनुपस्थिति में गुरुभाइयों ने निवेदिता की मदद की। बोसपाड़ा लेन स्थित घर में सरस्वती पूजा आयोजित की गई, जिसमें पास-पड़ोस की महिलाएँ भी शामिल थीं। पूरे मनोयोग के साथ निवेदिता पाठशाला के कार्यों में व्यस्त हो गईं। कुमारी बेट व क्रिस्टीन भी उनके काम में हाथ बँटाने लगीं। क्रिस्टीन ने काफी लंबे अरसे तक निवेदिता की पाठशाला का कार्यभार सँभाला और उन्हें सहयोग दिया।

इस प्रकार निवेदिता को पाठशाला के कार्यभार से थोड़ी मुक्ति मिली, वे भाषण तथा व्याख्यानों की भी तैयारी करने लगीं।

गरमियों की छुट्टियों में वे क्रिस्टीन के साथ मायावती गईं। वहीं निवेदिता की भेंट जापानी विद्वान् व कलाकार श्री ओकाकुरा से हुई। वे भी भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे। उन्होंने भारत में काफी लंबा समय व्यतीत किया तथा एक पुस्तक लिखी 'आइडियल्स ऑफ द ईस्ट'। निवेदिता ने पुस्तक की भूमिका लिखने के साथ-साथ संपादन भी किया। इसके अतिरिक्त ओकाकुरा ने भारतीय राजनीति में भी सक्रिय रूप से भाग लिया। मायावती में शांतिपूर्वक एक माह बिताकर वे कलकत्ता लौट आईं।

□

स्वामीजी से अंतिम भेंट

निवेदिता स्वामी विवेकानंदजी की मानस दुहिता थीं। स्वामीजी को अपना धर्मपिता मानती थीं और उन्हीं की प्रेरणा उन्हें स्वदेश से दूर, भारतवासियों की सेवा के लिए खींच लाई थी। अब अपने पिता तुल्य गुरुजी से बिछुड़ने की वेला आ पहुँची थी। स्वामीजी बनारस से लौटने के बाद उनसे मिले तो बातों-बातों में बोले कि वे बहुत दूर जाने वाले हैं। निवेदिता ने यही अर्थ लगाया कि वे अपनी भावी जापान यात्रा के विषय में कह रहे हैं।

उनके स्वास्थ्य में कोई अपेक्षित सुधार नहीं हो रहा था। एक दिन उन्होंने अपनी एक शिष्या से कहा कि वे जीवन का चालीसवाँ वर्ष पूरा नहीं कर पाएँगे। उन्हें लगता था कि वे अपना संदेश दे चुके हैं—अत: अब उन्हें लौट जाना चाहिए। सिस्टर निवेदिता लिखती हैं कि अंतिम विदा से कुछ दिन पहले स्वामीजी अपने शिष्यों के साथ चर्चारत थे—तभी किसी शिष्य ने पूछा, ''स्वामीजी क्या आपने जान लिया कि आप कौन हैं?''

अप्रत्याशित उत्तर मिला, ''हाँ! मैं समझ गया हूँ।''

सभी निस्तब्ध रह गए, यद्यपि वे जान गए थे कि स्वामीजी से वियोग की घड़ी समीप आ रही है।

स्वामीजी ने मृत्यु से पाँच दिन पूर्व पंचांग मँगाकर देखा। कुछ देर उसे देखने के बाद उन्होंने उसे रख दिया। उस समय तो इसे एक साधारण सी घटना ही माना गया, किंतु उनके देहावसान के पश्चात् शिष्यों को याद आया कि रामकृष्णजी ने भी मृत्यु से पूर्व ऐसा ही किया था, तो क्या स्वामी विवेकानंद को भी मृत्यु का पूर्वाभास हो चुका था? मृत्यु से तीन दिन पूर्व उन्होंने एक

संन्यासी के साथ टहलते हुए गंगा तट पर एक स्थान पर इंगित किया—''जब मैं शरीर त्याग करूँ, तो मेरा संस्कार यहीं करना।''

कुछ दिन पूर्व वे भगिनी निवेदिता से भी कह चुके थे—''एक उग्र ध्यानावस्था मेरे ऊपर हावी होती जा रही है। मैं मानसिक रूप से मृत्यु का स्वागत करने के लिए तैयार हूँ।''

२ जुलाई, १९०२ का दिन निवेदिता के जीवन का सबसे अंधकारमय दिन रहा। उनके जीवन का मार्गदर्शक आलोक बुझ गया। उस दिन स्वामीजी ने एकादशी का उपवास रखा था। निवेदिता उनसे पूछने आई थीं कि विद्यालय में विज्ञान का विषय आरंभ किया जाए अथवा नहीं। स्वामीजी ने 'न' तो नहीं कहा, किंतु वे पहले की तुलना में काफी उदासीन दिखे। निवेदिता जाने के लिए उठी ही थीं कि स्वामीजी ने कहा, ''भोजन का वक्त है, भोजन करके ही जाना।'' उन्होंने अपने हाथों से भोजन परोसने का आग्रह किया। प्रातःकाल का सादा भोजन था। भोजन के पश्चात् स्वामीजी ने निवेदिता के हाथ धुलवाए व हाथ पोंछे। निवेदिता का विरोध स्वाभाविक था। भला एक शिष्या अपने गुरुजी से हाथ कैसे धुलवा सकती थी? उन्होंने कहा, ''स्वामीजी, ऐसा तो मुझे आपके लिए करना चाहिए, आपको मेरे लिए नहीं।''

स्वामीजी बोले, ''ईसा मसीह ने अपने शिष्यों के पैर धोए थे।''

वे तो उत्तर देकर चुप हो गए, किंतु कुछ शब्द निवेदिता के कंठ तक आते-आते रुक गए। वे कहना चाहती थीं कि ईसा मसीह ने अपने अंतिम समय में ऐसा किया था। वे कह तो न सकीं, किंतु वास्तविकता तो यही थी, एक महान् आत्मा जगत् रूपी मंच से पटाक्षेप की तैयारी में थी।

बाद में, उस दिन की याद में निवेदिता ने अपनी एक सखी को लिखा था—''उस दिन उन्होंने मुझे कितने आशीर्वाद दिए। उनकी उस वक्त की भावमुद्रा, उनकी तेजस्विता व पवित्रता का मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकती। काश! आगे जो होने वाला था, वह मैं जान पाती—काश! मैं जान पाती कि उनके साथ का एक-एक क्षण कितना बहुमूल्य है।''

उस अंतिम भेंट के पश्चात् स्वामीजी ने निवेदिता को संदेश भिजवाया कि वे पहले से काफी बेहतर महसूस कर रहे हैं। निवेदिता ने उसी रात सपना देखा कि श्रीरामकृष्णदेव की आत्मा दूसरी बार शरीर त्याग कर रही है। संभवत गुरु ने पुत्री को अपने भावी निधन का संकेत दिया था।

शुक्रवार सुबह स्वामीजी उठे तो काफी प्रफुल्ल व स्वस्थ दिख रहे थे। उन्होंने कई दिन बाद शिष्यों के साथ सहज वार्त्तालाप किया, उनके बीच बैठकर भोजन किया। काफी समय बाद संन्यासियों की संस्कृत व्याकरण की कक्षा ली। ऐसा लग रहा था कि मृत्यु की काली छाया कहीं दूर चली गई हो। स्वामीजी संन्यासी मित्र के साथ टहलने भी गए। वापस लौटकर वे समाधि में लीन हो गए। कई घंटे की समाधि के पश्चात् वे आराम करने के लिए लेटे। लेटते ही उन्हें तुरंत नींद आ गई। यह नींद तो चिरनिद्रा थी; एक ऐसी निद्रा, जिसके पश्चात् मनुष्य कभी नहीं जागता। संन्यासियों व डॉक्टरों ने परीक्षण किया तो पता चला कि उनकी हृदय व नाड़ी की गति बंद हो चुकी है।

पौ फटते ही निवेदिता को स्वामीजी के शरीर त्याग की सूचना मिली। निवेदिता स्तब्ध रह गई। कैसा हृदय विदारक समाचार था। दोपहर तक वे स्वामीजी के पार्थिव शरीर को पंखा झलती रहीं। शव को फूलमालाओं व नए गेरुए वस्त्रों से सजाने के बाद उसी स्थान पर ले जाया गया, जिसे उन्होंने स्वयं अपने संस्कार के लिए चुना था।

स्वामीजी के बिस्तर पर बिछने वाली चादर भी उनके शव के साथ जला दी गई। यद्यपि निवेदिता उस अंतिम निशानी को अपने व जोसेफिन के लिए रखना चाहती थीं, किंतु संकोचवश कुछ कह न सकीं।

वे शाम तक जलती चिता के समीप बैठी रहीं, तभी जलती चिता से कपड़े का छोटा सा टुकड़ा हवा से उड़ा और उनके पैरों के पास जा गिरा। यह तो उसी चादर का टुकड़ा था, जिसे वे कुमारी जोसेफिन मैक्लाउड को देना चाहती थीं। स्वामीजी ने अपनी प्रिय शिष्या की आंतरिक इच्छा भी पूरी कर दी थी। निवेदिता ने श्रद्धापूर्वक उस पवित्र अवशेष को माथे से लगाकर सहेज लिया।

उस दिन निवेदिता अपनी दैनंदिनी में केवल तीन ही शब्द लिख सकीं—''स्वामीजी की मृत्यु।''

उनकी कलम इतना बल कहाँ से लाती कि उन अंतिम क्षणों का वर्णन कर पाती।

□

सेवा-कार्यों में नए आयाम

निवेदिता को स्वामीजी के वे शब्द याद आए, जो उन्होंने एक पत्र में लिखे थे—''हम सभी अपने-अपने भावों में आत्म-बलिदान कर रहे हैं। इस महापूजन में महाबलिदान के सिवा कोई अर्थ ही नहीं निकलता। स्वेच्छापूर्वक अपने मस्तक को आगे बढ़ा देनेवाले, अनेक यातनाओं से मुक्ति पा लेते हैं और बाधा उपस्थित करने वालों को बलपूर्वक दबाया जाता है। मैं स्वेच्छा से आत्मसमर्पण करना चाहता हूँ।''

स्वामीजी ने सच्चे हृदय से चाहा था कि जिस प्रकार गुरुदेव श्रीरामकृष्णजी ने उनका मार्गदर्शन किया था, वही गुरुदेव भगिनी निवेदिता को भी राह दिखाएँ।

निवेदिता के ऊपर गुरु के विचारों को कार्यरूप में परिणत करने का महती भार आन पड़ा था। वे स्वामीजी की इच्छानुसार शिक्षा व सेवा के क्षेत्र में पदार्पण कर ही चुकी थीं, किंतु इस बार के पश्चिम प्रवास के दौरान उन्हें भारत की राजनैतिक दशा से अच्छी तरह परिचित होने का अवसर मिला। उन्हें लगने लगा था कि भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता भी उसकी प्रगति के लिए बहुत मायने रखती है। मन दुविधा में था क्योंकि रामकृष्ण मिशन के कार्य व उद्देश्य मानवतावादी तथा आध्यात्मिक थे। राजनीति से किसी भी प्रकार के संबंधों की मनाही थी। मिशन की सक्रिय सदस्या होने के नाते उनसे भी सारे नियमों के पालन की अपेक्षा की जाती थी। निवेदिता ने अपनी एक सखी को लिखा कि वे उसके लिए प्रार्थना करें, ताकि वे स्वामीजी की अपेक्षानुसार कार्य कर सकें। अपने धर्मपिता के कार्यों की जिम्मेदारी लेकर

उनकी सारी कल्पनाओं को साकार रूप प्रदान कर सकें।

निवेदिता को ऐसा लगता ही नहीं था कि गुरु उनसे कहीं दूर चले गए हैं। केवल नश्वर देह नष्ट हुई थी, उनकी आत्मा तो आज भी निवेदिता के साथ थी। प्रत्येक कठिन परिस्थिति में वही तो उनका संबल व सहायक थी।

स्वामीजी की मृत्यु के पश्चात् निवेदिता देश के राष्ट्रीय जागरण पर भी ध्यान देना चाहती थीं। उन्हें लग रहा था कि वे राजनीतिक क्षेत्र के माध्यम से भी अपनी सेवा को नया आयाम दे सकती हैं और फिर गुरुजी ने भी तो कहा था कि वे स्वामीजी के कार्य के लिए नहीं बल्कि पूरे देश के लिए आई थीं। आज वही देश उनसे नई दिशाओं की ओर चलने का आह्वान कर रहा था।

राजनीतिक कार्यों में निवेदिता की रुचि के विषय में स्वामीजी ने कभी कुछ नहीं कहा था, अत: इस विषय में कहा नहीं जा सकता कि यदि वे जीवित होते तो उन्हें यह कदम उठाने की आज्ञा देते अथवा नहीं।

विभिन्न राजनीतिक दलों से निवेदिता के निकट संपर्क ने मठ के अधिकारियों व गुरुभाइयों को चिंतित कर दिया था। वे मठ को किसी भी रूप में राजनीतिक हलचल से अलग ही रखना चाहते थे।

निवेदिता के लिए निर्णायक क्षण थे। वे स्वामीजी के माध्यम से ही रामकृष्ण मिशन से जुड़ी थीं और उन्हीं के सेवा-कार्य को विस्तार देने के लिए मिशन से दूर होने का निर्णय लेना पड़ रहा था।

स्वामी ब्रह्मानंद व गुरुभाई उन्हें विशेष रूप से प्रिय थे। उन लोगों से इस बारे में चर्चा करने के बावजूद वे कोई ठोस निर्णय नहीं ले पा रही थीं। एक ओर स्वामीजी के सहयोगियों का स्नेह-बंधन था तो दूसरी ओर स्वामीजी की मातृभूमि की सेवा का प्रश्न। राष्ट्र के लिए कुछ करने की प्रेरणा ने ही निवेदिता को मठ से नाता तोड़ने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि यह केवल औपचारिकता भर थी। गुरुभाइयों के साथ उनके स्नेह-संबंधों पर इस वजह से कोई आँच नहीं आई।

उन्होंने स्वामी ब्रह्मानंदजी को पत्र द्वारा सूचित किया कि वे अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए मठ द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं कर सकती, इसलिए वे मठ से अपना नाता तोड़ रही हैं। उन्होंने गुरुभाइयों से मठ में आने-जाने की अनुमति भी ले ली, ताकि पूजनीय गुरुदेव की समाधि पर माथा टेक सकें।

पहले निवेदिता 'रामकृष्ण संघ की निवेदिता' हस्ताक्षर करती थीं, किंतु इसके बाद वे केवल 'रामकृष्ण-विवेकानंद की निवेदिता' हस्ताक्षर करने लगीं।

स्वामीजी की मानस-पुत्री का अपने धर्मपिता से जो अटूट नाता था, उसे तो संसार की कोई भी शक्ति तोड़ नहीं सकती थी। उन्होंने समाचार-पत्र में भी इस आशय से घोषणा कर दी कि भविष्य में उनके द्वारा किए गए किसी भी कार्य के लिए मठ की स्वीकृति होना आवश्यक नहीं, मठ का इसके लिए कोई उत्तरदायित्व नहीं होगा।

निवेदिता की इस घोषणा के तुरंत बाद अचानक एक विवाद उठ खड़ा हुआ। एक पत्र में दावा किया गया कि निवेदिता तो संघ की अध्यक्षा होने की क्षमता रखती हैं और स्वामीजी भी ऐसा ही चाहते थे।

निवेदिता ने इस दावे पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उक्त पत्र को लिखा कि भारत को धार्मिक जीवन की उन्नति के लिए किसी यूरोपियन नेता की आवश्यकता नहीं, वह अभी इतना सक्षम है कि अपने लिए समर्थ भारतीय नेता चुन सके, जो धर्म व अध्यात्म का ज्ञाता होगा।

निवेदिता ने कुमारी मैक्लाउड को भी पत्र द्वारा इस विषय में सूचना दी व कहा कि वे अपने सेवा-कार्यों को कुछ स्त्रियों की शिक्षा तक सीमित न करते हुए पूर्ण राष्ट्र की प्रगति व विकास के लिए कुछ करने तथा राष्ट्र की चेतना जाग्रत् करने में जुट जाना चाहती हैं।

□

नई उड़ान

निवेदिता राष्ट्रीय जागरण के लिए स्वामीजी के संदेश को देशवासियों तक पहुँचाना चाहती थीं। इसके लिए आवश्यक था कि वे भारत के विभिन्न हिस्सों तक पहुँचें व स्वामीजी की विचारधारा का प्रचार करें। शीघ्र ही इसका सुयोग भी जुट गया।

जब वे कलकत्ता लौटीं तो उन्होंने विद्यासागरजी की पुण्य स्मृति में आयोजित कार्यक्रम में भाषण दिया। उस भाषण को श्रोताओं ने खूब सराहा। आगे की योजनाओं को कार्यरूप देने से पहले ही निवेदिता बीमार पड़ गईं। बेलूर मठ के गुरुभाई अपनी भगिनी को इस दशा में अकेला कैसे छोड़ देते! उन्होंने निवेदिता की सेवा का भार स्वयं सँभाल लिया। जब तक वे पूरी तरह से स्वस्थ नहीं हो गईं, वे उनके खान-पान व आहार का पूरा ध्यान रखते रहे। निवेदिता ने हृदय से उनके प्रति आभार व्यक्त किया।

'द वेब ऑफ इंडियन लाइफ' पुस्तक अधूरी पड़ी थी। निवेदिता ने पहले उसे पूरा किया। देश की यात्रा के लिए आर्थिक रूप से मजबूत होना भी जरूरी था। इसके बाद उन्होंने तय किया कि वे बंबई जाएँगी। वहाँ से अनेक आमंत्रण भी आ रहे थे, अत: राह-खर्च की भी व्यवस्था हो गई। वे स्वामी सदानंदजी के साथ बंबई रवाना हुईं।

स्वामीजी की कृपा से उनमें इतना आत्मविश्वास आ गया था कि वे किसी भी बड़ी-से-बड़ी सभा को पूरे अधिकार व निर्भीकता से संबोधित कर सकती थीं, फिर चाहे उसके श्रोता किसी भी आयु, वर्ग, जाति, स्तर अथवा बौद्धिक श्रेणी के क्यों न हों।

बंबई के व्यस्त कार्यक्रम के दौरान उन्होंने स्वामी विवेकानंद, आधुनिक विज्ञान में हिंदू मानस, भक्ति और शिक्षा, एशियाई एकता, माँ की पूजा, भारतीय नारीत्व व आधुनिक विचारधारा के संदर्भ में हिंदुत्व आदि विविध विषयों पर व्याख्यान दिए।

धार्मिक, दार्शनिक व सामाजिक प्रकृति के उन भाषणों ने हिंदू परिवार की स्त्रियों को भी प्रभावित किया। वे विशेष रूप से उस आंग्ल महिला के दर्शन करने की इच्छुक थीं, जो भारत और भारतवासियों की सेवा के लिए अपना देश और परिवार छोड़ आई थीं।

निवेदिता ने उनके सम्मुख विनम्र भाव से स्वीकारा कि हिंदू धर्म के विषय में वे उनसे अधिक जानती हैं। एक विधर्मी होने के नाते वे उनके सामने इस विषय की विस्तृत व्याख्या नहीं कर सकतीं। यह सुनकर तो श्रोता महिलाएँ उनकी विद्वत्ता के आगे नतमस्तक हो उठीं। उनमें अपने ज्ञान के प्रति लेशमात्र भी अहंकार नहीं था।

इस प्रकार अनेक स्थानों पर निवेदिता का भावभीना स्वागत हुआ। उन्हें लगा कि गुरु का दिया आशीर्वाद फलीभूत हो रहा है। भारत की आत्मा और वे एकात्म होते जा रहे थे। स्वामीजी ने कहा था कि एक दिन भारत में उनकी निवेदिता का नाम चारों ओर गूँज उठेगा। वास्तव में ऐसा कौन था, जो भगिनी निवेदिता को नहीं जानता था!

नागपुर में भगिनी निवेदिता व्याख्यान देने पहुँचीं। वहाँ उन्होंने कॉलेज के छात्रों के सम्मुख आदर्श व तेजस्वी युवक का उदाहरण रखा, जो अपनी वीरता, कौशल, उत्साह व दृढ़ता से देश तथा माँ-बहनों की रक्षा करने की सामर्थ्य रखता हो। उसे विदेशी सरकार की सेवा करने के बजाय अपने देश की उन्नति व प्रगति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

वर्धा व अमरावती में भक्ति, शिक्षा आदि विषयों पर भाषण देने के पश्चात् वे बड़ौदा पहुँचीं। उनके पहुँचने से पूर्व उनकी ख्याति वहाँ पहुँच जाती। जनता एक विदेशी महिला के अद्‌भुत वक्तृता कौशल को देख दंग थी, जो भारतीय संस्कृति के विषय में उनसे कहीं अधिक जानती थीं।

बड़ौदा में उनकी भेंट महर्षि अरविंद से हुई, फिर वे अहमदाबाद, दौलताबाद, एलोरा आदि स्थानों से होते हुए हैदराबाद जा पहुँचीं। वहाँ कुछ दिन बिताने के बाद विजयवाड़ा गईं और फिर कलकत्ता लौट आईं।

□

दक्षिण भारत में अलख

जब दक्षिण भारत से निमंत्रण आने लगे तो निवेदिता ने स्वामी सदानंद के साथ वहाँ जाने का कार्यक्रम बना लिया। उनके साथ ब्रह्मचारी अमूल्य भी थे, जो आगे चलकर स्वामी शंकरानंद कहलाए और रामकृष्ण मिशन के प्रधान बने।

उन्होंने तय किया कि वे उड़ीसा के खंडगिरी में क्रिसमस मनाने के लिए रुकेंगे। खंडगिरी वह स्थान था, जहाँ दो हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने अपना अमर संदेश दिया था। आध्यात्मिक रूप से जाग्रत् टोली को ईसा के प्रवचन दोहराकर अपूर्व आनंद मिला।

जब मद्रास पहुँचे तो निवेदिता एक बार फिर मद्रासवासियों के आतिथ्य से अभिभूत हो उठीं। यह वही मद्रास था, जिसके निवासियों ने स्वामी विवेकानंदजी को विश्व के कोने-कोने तक धर्मवाणी पहुँचाने में आर्थिक सहायता प्रदान की थी। जब स्वामीजी विश्व धर्मसभा से लौटे तो मद्रास ने उनके स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछा दिए थे। स्वयं निवेदिता भी पहले मद्रासवासियों के अगाध स्नेह व अतिथि-वत्सलता का परिचय पा चुकी थीं। उसी वर्ष के आरंभ में जब वे पश्चिम से लौटी थीं तो उनका भी यहाँ भव्य स्वागत किया गया था।

इस प्रकार मद्रास उनके लिए कोई नई जगह नहीं थी। एक स्थानीय भक्त ने कैसल केरनन के प्रांगण में स्थित घर दे दिया था। स्वामी रामकृष्णानंद और निवेदिता मद्रास प्रवास के दौरान वहीं ठहरे।

निवेदिता अलग-अलग सभाओं में भाषण देती रहीं। उन्होंने 'युवक हिंदू

संघ' के तत्त्वावधान में भी भाषण दिया। उन्होंने युवकों को चेताया कि भारत की एकता या अखंडता कोई बाहरी वस्तु नहीं है। स्वयं भारतीयों ने अपनी मानसिकता के बल पर उसे पाया है। विभिन धर्मों, जातियों, प्रांतों, वर्णों व भाषाओं के बावजूद भारतीय हृदय से अभिन्न हैं। उनकी एकता की भावना किसी से उपहार में प्राप्त नहीं हुई, इसलिए युवकों को दूसरों का आभार मानने या उनके तलवे चाटने के बजाय स्वयं अपनी तप:पूत एकता की प्राणपण से रक्षा करनी होगी। जिस दिन पूरा राष्ट्र इस सोच के साथ उठ खड़ा होगा, जीवन एक नए रूप में सामने आएगा। फिर उन्होंने सबको स्वामीजी का संदेश याद दिलाया—'उठो, जागो और लक्ष्य-प्राप्ति तक रुको मत!'

मद्रास के विभिन्न स्थानों में युवकों पर निवेदिता व मिशन की गहरी छाप पड़ी। स्वामीजी के कार्यों और विचारधारा को आगे ले जाने के इच्छुक नवयुवकों ने स्थान-स्थान पर विवेकानंद समितियों की स्थापना की। समितियों में भाषणों का आयोजन होता। भजन-कीर्तन होता, वेदांत की कक्षाएँ लगतीं तथा दरिद्रनारायणों की सेवा की जाती। कहने का तात्पर्य यह है कि सत्कार्यों की ओर प्रेरित युवकों ने सेवा करने का माध्यम पा लिया था। उनके कार्य में मार्गदर्शन के लिए स्वयं निवेदिता ने एक पुस्तक लिखी।

कांजीवरम् स्टेशन पर आयोजित सभा को संबोधित करने के बाद वे मद्रास पहुँचीं। नए वर्ष में स्वामी विवेकानंद की जयंती सार्वजनिक रूप से मनाई गई। संयोग ऐसा कि यह शुभ अवसर भी मद्रास को ही प्राप्त हुआ। कैसल केरनन में श्रद्धालुओं ने स्वामीजी के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित की। दोपहर को भंडारे व प्रसाद वितरण के पश्चात् सभा का आयोजन हुआ और अंत में आरती की गई। निवेदिता ने अपनी डायरी में इसे अपने जीवन का एक चिरस्मरणीय दिन लिखा।

□

बुद्ध की धरती पर

कलकत्ता में वे व्याख्यानों व भाषणों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखने में भी व्यस्त रहीं। इसके पश्चात् उन्हें पटना व लखनऊ जाने का अवसर मिला। ९ जनवरी, १९०४ को बेलूर मठ में स्वामीजी का जन्मोत्सव मनाया गया, फिर वे स्वामी सदानंद व शंकरानंदजी के साथ पटना रवाना हुईं।

पटना में उन्होंने विद्यार्थी जीवन में शारीरिक व्यायाम तथा शारीरिक शिक्षा पर बल देते हुए कहा, ''देश की उन्नति ही तुम्हारा परम लक्ष्य होना चाहिए। केवल किताबी बातों या पुस्तकीय ज्ञान से कुछ नहीं होगा। देश तुमसे अपनी कार्यसिद्धि चाहता है। उठो, जागो और देश का कार्य करने के लिए तैयार हो जाओ। कहीं ऐसा न हो कि यह अवसर गँवा बैठो।''

एक भाषण में उन्होंने कहा कि लड़कों व लड़कियों की शिक्षा के उद्देश्य अलग हैं। यदि लड़कों की शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीय है तो लड़कियों के लिए सामाजिक।

'स्वामी विवेकानंद का जीवन-लक्ष्य' नामक व्याख्यान भी काफी सफल रहा। बुद्ध की पावन धरती पर जाने के बाद वे राजगीर, नालंदा व सारनाथ जैसे स्थानों को देखे बिना कैसे लौट सकती थीं। भगवान् बुद्ध से तो उनका पुराना नाता था। स्वयं गुरु ने उनकी दीक्षा के दिन बुद्ध के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित करवाई थी।

वे बोधगया पहुँचीं तो उस वटवृक्ष को देख आत्मविभोर हो उठीं, जहाँ महात्मा बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था। उन दिनों वहाँ मंदिर के लिए हिंदू तथा

बौद्धों में विवाद चल रहा था। निवेदिता ने इस विवाद की मध्यस्थता करते हुए दोनों पक्षों को समझाया। कलकत्ता लौटने पर भी वे इस विषय से जुड़ी रहीं तथा समाचार-पत्रों में कई लेख भी लिखे।

अक्तूबर में उन्हें तीसरी बार पुन: बोधगया जाने का अवसर मिला। इस बार उनके साथ कई गण्यमान्य हस्तियाँ थीं। वे सभी अतिथियों के सामने 'लाइट ऑफ एशिया' व 'बुद्धिज्म इन ट्रांसलेशन' नामक पुस्तकों का सस्वर वाचन करतीं।

उस आध्यात्मिक सभा में सभी लोग भगवान् बुद्ध की जीवन की झाँकियों के सजीव वर्णन में खो से जाते। गुरुदेव टैगोर की कविताएँ और वे भी उन्हीं के मुख से निकलतीं तो श्रोता आनंदित हो जाते।

वे लोग आस-पास के गाँवों या मंदिर के प्रांगण में टहलते। सायंकाल बोधिवृक्ष के नीचे ध्यान रमाते।

एक दिन वे सब 'अरवेल ग्राम' गए। वहाँ कभी बौद्धकालीन सुजाता का घर था। यद्यपि कोई भग्नावशेष तक मौजूद नहीं था, किंतु निवेदिता वहाँ की पावन माटी को माथे से लगाकर ही कृत-कृत्य हो उठीं।

जिस रात बोधगया से वापस आना था। वे अचानक ही भावुक हो उठीं और उनकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं। देश की शोचनीय दशा और भारतवासियों की मोहनिद्रा ही उनकी पीड़ा का कारण थे।

□

भारत माता की जय!

देश के राजनीतिक पटल पर स्वतंत्रता के आकांक्षी भारतीयों की गिनती बढ़ती जा रही थी और वहीं सरकार भी देशभक्ति की इस भावना को पैरों तले कुचल देने के लिए कटिबद्ध थी। सारे देश में एक विचित्र सी लहर फैल चुकी थी। पाठकगण यह तो जानते ही हैं कि निवेदिता मठ की सदस्यता से अलग हो चुकी थीं, ताकि राजनैतिक कार्यकलापों में योगदान दे सके, किंतु इसका अर्थ यह नहीं था कि वे स्वामीजी की शिक्षाएँ भी भुला चुकी थीं। राष्ट्र-निर्माण के कार्य के लिए उन्होंने स्वामीजी की विचारधारा को ही ठोस आधार बनाया।

वे कलकत्ता में रहती थीं और उन दिनों ब्रिटिश सरकार का केंद्र भी वही था। नाना राष्ट्रीय आंदोलनों का श्रीगणेश भी वहीं से हो रहा था। ऐसे में उनका आगे आना स्वाभाविक ही था। उन्होंने राष्ट्रीय संग्राम में नैतिक व बौद्धिक रूप से योगदान दिया, किंतु उनकी भूमिका संदेहास्पद, काल्पनिक प्रसंगों और घटनाओं में कहीं खो गई।

उनके द्वारा किए गए राजनैतिक कार्यों को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया, वह नितांत अव्यावहारिक व अनुमानों पर आधारित है। किसी भी अन्यायपूर्ण घटना को देख निवेदिता खुलकर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करतीं। कुछ समय बाद निवेदिता द्वारा श्रीअरविंद की मान्यताओं का समर्थन करने पर उन्हें भी क्रांतिकारी कार्यों में लिप्त माना जाने लगा।

अधिकांश जीवनीकार भी इस भ्रामक विचार के प्रचार के लिए उत्तरदायी रहे। कहीं उन्हें क्रांतिदूत कहा गया तो कहीं साहसी नेत्री; सही मायनों में वे

एक समाजसेविका तथा राष्ट्र के निर्माण से संबद्ध रचनात्मक विचारक व शुभचिंतक थीं। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े अनेक नेताओं के साथ उनका परिचय था, जिसमें नरम दल व गरम दल—दोनों ही पक्ष शामिल थे। गरम दल के बिपिनचंद्र पाल हों या नरम दल के गोपाल कृष्ण गोखले—दोनों से स्नेह संबंध रखती थीं, क्योंकि वे भी उनकी तरह स्वातंत्र्य के पुजारी थे। उनके विचार पूर्णत: मौलिक व राष्ट्रवादी थे। वे नरम दल की विचारधारा से सहमत नहीं थीं, गरम दल की समर्थिका होने के बावजूद उन्होंने कभी भी क्रांति संबंधी कार्यवाही में कभी भाग नहीं लिया। वे किसी भी हिंसक काररवाई के पक्ष में कभी नहीं रहीं।

अनेक चरित्र लेखकों ने उन्हें सशस्त्र क्रांति से जोडते हुए नाना प्रसंग रचे। उन्होंने कहा कि स्वामी विवेकानंद की मृत्यु के बाद वे क्रांतिकारी बन गई थीं। स्वामीजी से मिलने से पूर्व भी वे सशस्त्र क्रांति में भाग ले चुकी थीं, जबकि उनके जीवनकाल में लिखे गए कई पत्रों से पता चलता है कि वे एक परम शाश्वत सत्य की खोज में स्वामीजी के पास आई थीं और उनके हृदय में संन्यासिनी बनकर सेवाकार्य करने की उत्कट इच्छा थी। समाज के प्रतिष्ठित व गण्यमान्य व्यक्ति निरंतर उनके संपर्क में रहते थे। सरकार उनकी गतिविधियों व पत्रों पर भी नजर रखती थी। यदि कहीं से भी सरकार को लगता कि वे क्रांतिकारियों से संबंधित हैं तो उन्हें अवश्य ही बंदी बना लिया जाता।

क्रांतिकारी दल के नेताओं ने स्वयं यह स्वीकारा था कि निवेदिता ने कभी प्रत्यक्ष रूप से उनके कार्यों में भाग नहीं लिया और न ही सशस्त्र क्रांति को प्रेरित किया। उन्होंने तो स्वामीजी के निम्नलिखित शब्दों को ही सदा सिर-माथे रखा और प्राण-पण से निभाया भी—

''…आनेवाले पचास वर्षों तक हमें केवल एक ही आराध्य देव चाहिए और वह है 'मातृभूमि'। पहले हमें भारतमाता को पूजना होगा और फिर उसके बाद किसी अन्य देवी-देवता को।''

□

राजनीति और युवा शक्ति

स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े नेता चाहते थे कि राष्ट्रकार्य के लिए देश की युवा शक्ति को संगठित किया जाए और उन्हें राष्ट्रीय कार्यों के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इस कार्य के निष्पादन के लिए अनेक समितियों की स्थापना की गई। 'डॉन सोसाइटी' व 'अनुशीलन समिति' के अतिरिक्त 'गीता सोसाइटी', 'विवेकानंद सोसाइटी' व 'यंग मेंस हिंदू यूनियन कमेटी' ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किए।

भगिनी निवेदिता स्वयं ऐसे कार्यों में रुचि रखती थीं, अत: वे इनकी गतिविधियों में सक्रिय रूप से हिस्सा लेने लगीं। वे प्रत्येक सभा के आमंत्रण पर अवश्य जातीं। वहाँ स्वामी विवेकानंद के कार्यों तथा विचारों, गीता व्याख्या व हिंदू धर्म आदि विषयों पर व्याख्यान देतीं। उनका कर्मठ व तेजस्वी व्यक्तित्व युवा वर्ग के लिए किसी अनुकरणीय उदाहरण से कम नहीं था।

राष्ट्रवाद प्रचारिका के रूप में प्रसिद्ध निवेदिता युवकों को शारीरिक व मानसिक बल में वृद्धि करने को कहतीं। उन्होंने खेल, गायन व वाद-विवाद प्रतियोगिताओं को उनके प्रशिक्षण का ही एक अंग बना दिया। कई युवकों को उन्होंने उत्कृष्ट कार्यों के लिए विवेकानंद पदक भी प्रदान किए।

द डॉन सोसाइटी के राष्ट्रीय कार्यों से कई गण्यमान्य व्यक्ति जुड़े थे। इसी ने राष्ट्रीय महाविद्यालय व राष्ट्रीय शिक्षा समिति की भी स्थापना की। समितियाँ युवकों को शारीरिक रूप से सुदृढ़ बनाने के लिए व्यायामशालाओं का संचालन करतीं। क्रीड़ा स्पर्धाओं व गोष्ठियों का आयोजन होता। विभिन्न देशों की राजनीति व इतिहास की चर्चा के साथ-साथ महापुरुषों के जीवन-

चरित्रों से भी परिचय करवाया जाता—कुल मिलाकर ये युवाओं के शारीरिक, मानसिक व नैतिक प्रशिक्षण का अच्छा माध्यम थीं।

निवेदिता के गुरुभाई आध्यात्मिक कक्षाओं का संचालन करते। समितियों की सांस्कृतिक व सामाजिक गतिविधियों ने युवा वर्ग को तेजी से अपनी ओर आकृष्ट किया। श्रीअरविंद इन सभी समितियों को एकत्र करके एक दल बनाना चाहते थे, किंतु वे इस कार्य में सफल नहीं हो सके।

निवेदिता काफी लंबे समय तक अनुशीलन समिति से जुड़ी रहीं। उनके पास क्रांतिकारी साहित्य का भंडार था। पुस्तकें तभी सार्थक होती हैं, जब उनके विचार अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचें, वे इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थीं, अत: उन्होंने अपनी वे सारी पुस्तकें सक्रिय कार्यकर्ताओं को दे दीं, जिनमें अमेरिका की स्वतंत्रता, डच सरकार का इतिहास, अर्थशास्त्र की पुस्तकें व महानायकों के जीवन-चरित्र शामिल थे।

निवेदिता को इस बात का हार्दिक संतोष था कि देश धीरे-धीरे जाग रहा है। राष्ट्रीय जागृति की भावना का उदय हो चुका था, लोग अन्याय का सामना करने के लिए स्वयं को तैयार कर रहे थे, किंतु अभी ठोस दिशा-निर्देश का अभाव था।

सन् १९०५ के आरंभ में ऐसी ही एक घटना घटी, जिसने भारतीयों को लज्जित कर दिया। लॉर्ड कर्जन ने एक दीक्षांत समारोह में कहा कि पूर्व की तुलना में पश्चिम वालों ने 'सत्य' को आदर-मान देना सीख लिया था। कक्ष में तत्काल विरोध का कोई स्वर नहीं उठा, किंतु निवेदिता सहित कुछ अन्य श्रोता नेताओं ने इस विषय पर परस्पर चर्चा की और इसके प्रतिकार का निर्णय लिया।

भगिनी निवेदिता ने लॉर्ड कर्जन के झूठे आरोप का मुँहतोड़ उत्तर दिया, जिससे भारतवासी प्रसन्न हो उठे। यद्यपि बाद में निवेदिता ने उन छात्र श्रोताओं को भी आड़े हाथों लिया, जो बहुत ही शांति व धैर्य से अपने पूर्वजों व राष्ट्र का अपमान सहते रहे।

□

राष्ट्रध्वज की कल्पना

अंग्रेज सरकार ने बंगाल के विभाजन का निर्णय ले लिया था। लोगों ने विरोध प्रकट करने के लिए टाउन हॉल में एक विशाल सभा आयोजित की; भगिनी निवेदिना ने भी उसमें भाग लिया।

उन्होंने बहिष्कार व स्वदेशी आंदोलन को भी अपना समर्थन दिया। वे प्राय: अपने लेखों तथा भाषणों में इसका वर्णन करती थीं। उनका मानना था कि स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना भारतीयों का धर्म है। काफी समय बाद जब एक बार लेडी मिंटो उनसे मिलने आई थीं तो वे भी यह देखकर दंग रह गई थीं कि भगिनी निवेदिता के पास प्रयोग में आने वाली सभी वस्तुएँ स्वदेशी थीं और वे गर्व के साथ उनके गुण भी बखानती थीं। उनका कहना था—

''स्वदेशी आंदोलन में साहस व आत्मनिर्भरता की भावना दिखती है। सहायता के लिए कोई भीख नहीं माँगता, रियायतों के लिए चापलूसी नहीं करता। कभी ऐसा समय भी आएगा, जब भारत में विदेशों से कोई वस्तु खरीदने वाले व्यक्ति को गौ-हत्यारे की भाँति ही पापी माना जाएगा।''

यद्यपि स्वदेशी आंदोलन को पूरी तरह से सफलता नहीं मिली, किंतु वे निराश नहीं थीं। उन्होंने सन् १९०६ में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में भी भाग लिया।

राष्ट्रीयता के विकास के लिए चिंतित निवेदिता ने सभी दलों की एकता पर बल दिया और इसी दौरान उनके मन में राष्ट्रध्वज की कल्पना ने जन्म लिया। एक ऐसा राष्ट्रध्वज, जो पूरे राष्ट्र की एकता की जीती-जागती मिसाल हो। एक ऐसा प्रतीक, जिसके जिए देशवासी मर-मिटने को तैयार हो जाएँ।

एक ऐसा झंडा, जिसके तले खड़े देशवासी उसकी मान-मर्यादा बनाए रखने के लिए कमर कस लें।

निवेदिता वज्र को भारतीय ध्वज के प्रतीक रूप में लेना चाहती थीं। वे उस पौराणिक प्रसंग से प्रेरित थीं, जिसमें महर्षि दधीचि ने वज्र निर्माण के लिए अपनी अस्थियों तक का बलिदान कर दिया था। उनका कहना था कि नि:स्वार्थी व त्यागी व्यक्ति भी देवताओं का शस्त्र बन सकता है, बुराई के नाश का माध्यम हो सकता है—यह कैसे व क्योंकर होगा, यह सब भूलकर बस त्याग करने के लिए जागना होगा। आपसी मतभेदों को भुलाकर एक राष्ट्रीय ध्येय के लिए एकजुट होना होगा, तभी देश स्वतंत्रता का सुख ले पाएगा।

निवेदिता की स्कूली छात्राओं ने सन् १९०६ में कांग्रेस द्वारा आयोजित हस्तशिल्प प्रदर्शनी के लिए राष्ट्रीय ध्वज का नमूना बनाया। उन्होंने सिंदूरी पृष्ठभूमि पर काले रंग में वज्र कढ़ाई करके बनाया था, जिस पर वंदेमातरम् भी लिखा था। तत्कालीन हस्तियों ने उसे सराहा तथा अपना आशीर्वाद दिया। निवेदिता ने सार्वजनिक रूप से भी उस ध्वज का चित्र प्रकाशित करवाया।

□

विदेश की ओर

गोपाल की माँ अपने जीवन के अंतिम वर्षों में निवेदिता के साथ रहीं। स्वामी सारदानंद रोगावस्था में माँ को कलकत्ता ले आए थे, किंतु निवेदिता माँ की सेवा का भार स्वयं लेना चाहती थीं, इसलिए वे उन्हें साथ ले आईं और ढाई वर्ष तक उनके साथ रहीं। तिरानबे वर्ष की आयु में उनका देहांत हुआ।

इसी वर्ष स्वामी स्वरूपानंद भी चल बसे, वे 'प्रबुद्ध भारत' के संपादक थे। उन्होंने निवेदिता को हिंदू धर्म का महत्त्व समझने में काफी सहायता की थी। इन दो घटनाओं से वे अत्यंत मर्माहत हुईं।

इधर पूर्वी बंगाल से अकाल व बाढ़ की खबरें आ रही थीं। पहले सूखा और फिर अतिवृष्टि का कहर झेल रहे ग्रामीणों का दु:ख निवेदिता से देखा नहीं गया। वे वहाँ जाकर जी-जान से सेवा में जुट गईं।

कलकत्ता लौटीं तो वे बुरी तरह से बीमार पड़ गईं। भगिनी क्रिस्टीन व अनुयायियों ने उनका ध्यान रखा। तबीयत सँभलते ही वे नाना प्रकार के लेखन कार्यों में व्यस्त हो गईं। उस कर्मयोगिनी ने जैसे खाली बैठना तो सीखा ही न था। उनका हर नया दिन अपने आप में नई योजनाओं, नए विचारों व कार्यों की संभावना से परिपूर्ण होता था।

सन् १९०७ में श्रीमती सेवियर्स कलकत्ता आईं और 'गीता' के प्रूफ देखने में सहायता की। निवेदिता व क्रिस्टीन बसु दंपती के साथ मायावती पहुँचे तो वहाँ स्वामीजी के संपूर्ण साहित्य के प्रकाशन का कार्य चल रहा था। पुस्तक की भूमिका के लिए निवेदिता से सार्थक व्यक्ति कौन हो सकता था!

एक पुत्री ही अपने पिता की जीवनगाथा की प्रस्तावना लिखने की सच्ची अधिकारिणी थी।

निवेदिता ने कलकत्ता लौटकर 'अवर मास्टर ऐंड हिज मैसेज' शीर्षक से भूमिका लिखी। शरीर क्लांत था, अत: श्रीमती बुल ने उनसे आग्रह किया कि जलवायु परिवर्तन के लिए उनके साथ पश्चिम चलें।

इस बीच जगदीश चंद्र बसु की 'प्लांट रिस्पांस' व 'कंपेरेटिव इलेक्ट्रो साइकोलॉजी' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं और उन्हें यूरोप आने का निमंत्रण मिला था। बसु परिवार निवेदिता को साथ ले जाना चाहता था।

भगिनी निवेदिता द्वारा विदेश जाने के निर्णय की संभवत: एक और वजह थी। उन्हें मन-ही-मन भय होने लगा था कि कहीं वे असमय संसार से चली गईं तो उनके अधूरे लक्ष्य की पूर्ति कैसे होगी! क्रिस्टीन धनाभाव में कितने दिन पाठशाला चला पाएगी। अत: उन्होंने तय किया कि वे पाठशाला के लिए थोड़ी धनराशि एकत्र करने के उद्देश्य से विदेश जाएँगी।

भारत से जाने से पूर्व वे सदा की तरह श्रीमाँ का आशीर्वाद लेने गईं। बेलूर मठ व दक्षिणेश्वर के दर्शन किए और फिर यूरोप के लिए रवाना हो गईं।

इस यात्रा के दौरान भी वे नाना लेखन कार्यों में व्यस्त रहीं। क्रिस्टीन के पत्र से पता चला कि पाठशाला का काम फिर से आरंभ हो गया है तो उन्होंने यूँ चैन की साँस ली मानो हृदय से कोई भारी बोझ उतर गया हो।

□

परिवार से अंतिम भेंट

भगिनी निवेदिता ने स्वामीजी के जाने के बाद स्वयं को उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर पूर्णतया प्रवृत्त कर दिया था। अब भारत ही उनकी मातृभूमि था और भारतवासी उनके निकट पारिवारिक सदस्य!

सितंबर १९०७ में उन्हें अपने मूल परिवार से पुन: भेंट करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। सब परिवार-जन मिलकर बेहद आनंदित हुए, किंतु कौन जानता था कि यह मारग्रेट से अंतिम भेंट होगी।

निवेदिता अपनी माँ मैरी, बहन मे व भाई रिचमंड से पाँच साल बाद मिलीं। परिवार में हर्षोल्लास की लहर दौड़ गई। निवेदिता के सभी समाचार उन तक पहुँचते ही रहते थे। अपनी बेटी मारग्रेट को समाज-सेवा व अध्यात्म के पथ पर प्रगति करते देख माँ मैरी गर्व अनुभव करतीं। पुत्री के चेहरे पर छाए अपूर्व तेज व आत्मबल को देख उन्हें इस बात की तसल्ली हुई कि उन्होंने अपने पति की इच्छा का मान रखा। स्वयं निवेदिता के पिता चाहते थे कि जब कभी मारग्रेट के लिए किसी भी रूप में, किसी भी माध्यम से भारत से बुलावा आए तो उसे वहाँ जाने दिया जाए।

उनकी दुलारी मारग्रेट अब 'भगिनी निवेदिता' के नाम से जानी जाती थीं। पुत्री के पत्रों से वे भी भारत के विषय में बहुत कुछ जान गई थीं। अपनी पुत्री को हिंदू जीवन-पद्धति के अनुसार चलते देख उन्हें प्रसन्नता ही हुई।

पूरा परिवार मिलकर बैठता तो बातें खत्म ही न होतीं। निवेदिता स्नेहवश सभी के लिए भारत से छोटी-छोटी सौगातें लेकर गई थीं। वे मोतियों की थैलियाँ हों या रुद्राक्ष, कपूर हो या तुलसी की माला, धूप-अगरबत्ती हो या देवी-देवताओं

के चित्र—सभी से उनके प्यारे भारत की पावन सोंधी गंध आती थी।

जब माँ मैरी ने श्रद्धावश गंगाजल की कलशी को माथे से लगाया तो वे भी गंगा मैया की पवित्रता को याद कर विभोर हो गईं। भारत के किस्से-कहानियों, परंपराओं व रीति-रिवाजों को सभी लोग बेहद चाव से सुनते।

निश्चय ही परिवार के साथ बीता वह समय निवेदिता के लिए काफी सुखकारी रहा। बोस परिवार को भी उनके परिवार के बीच रहने का अवसर मिला। मैरी ने अपनी पुत्री के शुभचिंतकों का बहुत अच्छे तरीके से स्वागत-सत्कार किया। वहाँ कुछ समय बिताने के बाद निवेदिता दूसरे शहर में चली गईं।

विदेश प्रवास के दौरान निवेदिता नाना प्रकार के कार्यों में व्यस्त थीं तथा कार्य समाप्त होते ही भारत लौट जाने का विचार था कि एक दिन माँ की बीमारी की सूचना मिली। माँ कैंसर रोग से पीड़ित थीं।

उस समय निवेदिता श्रीमती बुल के साथ थीं। तत्क्षण अमेरिका से जाना भी मुश्किल था। उन्होंने माँ को पत्र लिखकर श्रीरामकृष्णदेव व स्वामी विवेकानंदजी का स्मरण करने को कहा। यह भी लिखा कि यदि आज उनके गुरुजी तथा उनके पूजनीय गुरुदेव जीवित होते तो स्पर्श मात्र से ही उनकी सारी पीड़ा व रोग हर लेते।

जनवरी में निवेदिता माँ के पास पहुँची। माँ का रोग असाध्य हो चला था, किंतु प्यारी पुत्री को पास पाकर उनका मन शांत हो गया। वे अंतिम क्षणों को अपने परिवार के साथ बिताना चाहती थीं और दयालु ईश्वर ने उनकी यह अभिलाषा पूरी कर दी थी।

जनवरी के अंत में माँ चल बसीं। जीवन में कोई भी व्यक्ति कितना ही ऊँचा, कितना ही महान् क्यों न हो जाए, किंतु अपनी माँ के लिए तो बालक ही रहता है। निवेदिता भी माँ की मृत्यु पर बिलख पड़ीं।

दोनों भाई-बहन को ऐसे समय में उनके पास होने से काफी संबल मिला। निवेदिता ने उनके आँसू पोंछे और माँ की अंतिम इच्छा पूरी करने में सहयोग देने को कहा।

माँ की इच्छा थी कि निवेदिता के पिता के धार्मिक प्रवचनों को लिखित रूप में क्रमबद्ध किया जाए। उन्होंने प्रवचन तैयार किए और भाई-बहन को सौंप दिए।

आयरलैंड के 'ग्रेट टेरिगटेन' में उनकी माँ की समाधि बनाने का निश्चय

हुआ। वहीं उनके पिता की समाधि भी थी। माँ व पिता की समाधियों को पास-पास देखकर उनके मन को संतोष हुआ कि बिछुड़े हुए प्रेमी फिर से एक हो गए। वहीं उन्हें उन सब लोगों से भी मिलने का अवसर मिला, जो उनके परिवार के पूर्व परिचित थे, क्योंकि कई वर्ष पूर्व निवेदिता का परिवार वहीं रहता था।

यह सब कार्य पूरा करने के बाद उन्होंने अपने भाई-बहन से विदा ली, क्योंकि दूसरे बृहत्तर परिवार के कई उत्तरदायित्व निबटाने बाकी थे। स्वामीजी ने अपनी शिष्या को नए परिवार के रूप में पूरा भारत सौंपा था। अब उन्हें अपने नए परिवारजनों के बीच, उनके सुख-दु:ख से एकाकार होने व उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिए उनके पास लौटना था।

इस विदेश प्रवास के दौरान वे भारत संबंधी विषयों पर लेख तथा व्याख्यान देने में व्यस्त रहीं। 'क्रेडल टेल्स ऑफ हिंदुइज्म' का प्रकाशन भी काफी सफल रहा। वे सर हेनरी कॉटन, श्रीमती मीर हार्डी, विलियम रेडमंड, डॉ. बी.एच. रदरफोर्ड आदि अनेक संसद् सदस्यों व पत्रकारों से मिलीं तथा भारत के लिए अनथक कार्य किया।

उन्हें भारत में तेजी से बढ़ते राजनीतिक दबाव का भी पता चल रहा था। नरम दल व गरम दल की खाई गहरा गई थी। श्रीअरविंद व बिपिनचंद्र पाल को बंदी बना लिया गया। क्रांतिकारियों का कार्य व सरकार का अत्याचार—दोनों ही चरम सीमा पर थे। वे चाहकर भी भारत नहीं लौट सकती थीं, क्योंकि स्वयं व्याख्यानों द्वारा पाठशाला के लिए धनराशि एकत्र करने के कार्य में लगी थीं।

इन सबके अतिरिक्त उन्होंने स्वामी विवेकानंदजी के पत्र एकत्र करने का कार्य भी किया। बेलूर मठ के अधिकारियों से प्राप्त सर्वाधिकार के पश्चात् वे कुमारी मैरी हेल से मिलीं। मैरी हेल परिवार के पास उनके दिवंगत गुरु द्वारा भेजे गए कुछ पत्र थे। इस बार मैरी हेल ने उन्हें निराश नहीं किया और स्वामीजी के पत्र उनको सौंप दिए। निवेदिता स्वामीजी का जीवन-चरित्र लिखने के कार्य में भी सहयोग दे रही थीं।

बोस दंपती मार्च में इंग्लैंड वापस आए और सभी लोग यूरोप के लिए रवाना हुए। जुलाई में वे भारत लौटने लगे तो समाचार मिला कि किसी भारतीय ने सर कर्जन वाइली की हत्या कर दी। यह सुनकर उन्होंने अपना दु:ख प्रकट किया।

□

अखंड भारत

१८ जुलाई, १९०९ में पूरे दो वर्ष बाद वे भारत लौटीं। उनके अधिकांश जीवनी लेखकों का कहना है कि वे वापस आने के कुछ समय तक छद्म वेष में रहीं। अंग्रेज पुलिस को उन पर संदेह था, अत: उन्हें सतर्क होना पड़ा। उन्हें पुलिस को चकमा देने के लिए अलग-अलग स्थानों की यात्रा करनी पड़ी। प्रामाणिक जीवनीकार के अनुसार ये सब घटनाएँ कपोल-कल्पित हैं।

चाहे अंग्रेज सरकार को उनके क्रांतिकारी होने के विषय में संदेह रहा हो, किंतु वे अपनी ओर से सहज व सामान्य ही रहीं, क्योंकि उन्होंने कभी हिंसक क्रांति को समर्थन नहीं दिया। भारत के राजनीतिक वातावरण में खलबली मची हुई थी।

अलीपुर षड्यंत्र कांड के बाद सरकार का रूप और उग्र हो गया था। भूपेंद्रनाथ दत्तजी जेल से रिहा होने के बाद अमेरिका चले गए थे और बिपिनचंद्र पाल इंग्लैंड में थे। नेताओं को देश-निकाले दिए जा रहे थे। केवल संदेह के आधार पर ही उनके घरों की तलाशियाँ ली जातीं, उन्हें बंदी बना लिया जाता।

दिखने में ऊपर से सबकुछ शांत लगता था, किंतु यह तो तूफान से पहले की शांति थी। कुछ क्रांतिकारी संन्यास लेकर मठ की ओर आए तो सरकार का ध्यान भी इस ओर गया। यद्यपि मठ के संन्यासी उनकी जमानत देते थे कि वे भविष्य में क्रांति से जुड़ा कोई कार्य नहीं करेंगे। वे श्रीमाँ का आशीर्वाद प्राप्त करने आते। संभवत: वह समय आ चुका था, जिसकी स्वामी रामकृष्णदेवजी ने भविष्यवाणी की थी। एक दिन माँ शारदा ने उनसे अपने नि:संतान होने के विषय में कहा तो वे बोले थे कि एक दिन तुम्हारी इतनी

संतानें होंगी कि तुम माँ-माँ सुनते-सुनते बौरा जाओगी।

इस दौरान निवेदिता श्रीअरविंदजी से भी कई बार मिलीं। अरविंदजी का दावा था कि उन्होंने कारावास के दौरान विवेकानंदजी की वाणी सुनी थी तथा उनकी उपस्थिति को भी महसूस किया था। ऐसे में निवेदिता व उनके बीच सहज स्नेह स्वाभाविक ही था। वे दोनों एक ही गुरु से संबद्ध थे। उन दिनों श्रीअरविंद आध्यात्मिक स्तर पर भी उन्नत हो रहे थे

लगभग ३ माह तक उनके पत्र 'कर्मयोगी' के संपादन का भार निवेदिता ने सँभाला। संपादक बदलने से पत्र का कलेवर भी बदल गया।

राजनैतिक समाचारों के बजाय स्वामीजी के संदेश व आशीर्वाद प्रकाशित होने लगे। यद्यपि धर्म व राजनीति से संबद्ध इस पत्र पर सरकार ने कुछ समय बाद पाबंदी लगा दी। इस दौरान वे श्रीअरविंद से मिलने चंद्रनगर भी गईं। श्रीअरविंद की पत्रिका में उनका एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ था, जिसे देशवासी कभी भूल नहीं सकते। उन्होंने लिखा था—

''मेरा विश्वास है कि भारत एक है, अखंड तथा अविभाज्य है। एक देश, समान हित व सामान्य स्नेह की भावना ही राष्ट्रीय एकता के निर्माण का आधार है। मेरा विश्वास है कि वेदों-उपनिषदों, विभिन्न धर्मों व साम्राज्यों के विनिर्माण में, विद्वानों के ज्ञान तथा संतों के ध्यान में जो शक्ति मुखरित हुई है, वही शक्ति हमारे बीच प्रकट हुई है और इसे ही हम राष्ट्रीयता के नाम से जानते हैं।

''मेरा मानना है कि भारत का अतीत व वर्तमान आपस में संयुक्त है, इसी से उसके भविष्य की संभावना निश्चिय ही उज्ज्वल है!''

''हे राष्ट्रीयता! मेरे पास आओ! उल्लास अथवा विषाद, लज्जा अथवा सम्मान—मैं किसी भी रूप में तुम्हारे स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ। तुम मुझे अपने में समाहित कर लो।''

□

संदेहों के बीच

श्री अरविंद पांडिचेरी चले गए तो निवेदिता पर पुलिस की निगरानी और भी बढ़ गई। उनके सभी पत्र भी उन तक पहुँचने से पहले पढ़े जाते थे। अपनी डाक को अस्त-व्यस्त तथा फटेहाल देखकर एक दिन वे क्रोधित हो उठीं तथा पोस्टमास्टर जनरल को पत्र लिखा कि यदि उनके पत्र सलीके से खोले जाएँ या पढ़ने के बाद बंद कर दिए जाएँ तो उन्हें बड़ी सुविधा होगी।

पत्र के जवाब में वहाँ से पंजीकृत पत्र आया कि वे संदिग्ध क्रांतिकारियों की सूची में आती हैं, अत: उनके पत्रों को खोलना उनकी विवशता है।

मार्च में वायसराय की पत्नी लेडी मिंटो छद्म वेश में निवेदिता की पाठशाला पहुँचीं, किंतु उनसे मिलने के बाद सारे संदेह जाते रहे और वे एक सकारात्मक प्रभाव के साथ लौटीं। लेडी मिंटो बेलूर मठ भी गईं। दक्षिणेश्वर जाते समय वे भगिनी निवेदिता व क्रिस्टीन को भी साथ ले गईं।

बाद में उन्होंने एक जगह अपनी इस यात्रा का वर्णन करते हुए लिखा था कि उस निवेदिता के सान्निध्य ने उनकी यात्रा को और भी आनंददायक बना दिया था। नाव में ही उन्हें चाय परोसी गई तो उन्हें यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि वे जिस बेहतरीन चाय तथा बिस्कुट का स्वाद ले रही थीं, वह सारा सामान स्वदेशी था। भगिनी निवेदिता के सौंदर्य-बोध ने रमणीक वातावरण की मोहकता को और भी बढ़ा दिया। वे जब कुछ कहते-कहते कविता की पंक्तियाँ गुनगुनाने लगतीं तो सब विभोर हो उठते। लेडी मिंटो यात्रा में भगिनी निवेदिता जैसी बौद्धिक, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक रूप से उन्नत महिला का साथ पाकर बेहद आनंदित हुईं।

फिर उन्होंने उन्हें चाय-पान के लिए राजभवन में भी आमंत्रित किया। अब वे निवेदिता की वास्तविकता जान चुकी थीं। उन पर किए जाने वाले सारे संदेह निराधार थे। उन्होंने पुलिस निगरानी के बारे में अपनी चिंता जताई और निवेदिता से कहा कि वे इस विषय में पुलिस आयुक्त से भेंट करें।

अगले वर्ष लेडी मिंटो को निवेदिता के असमय निधन की सूचना मिली तो उन्हें बहुत दु:ख हुआ। उन्होंने भगिनी क्रिस्टीन को लिखा था—

''निवेदिता की मृत्यु से एक कर्मशील व्यक्तित्व कहीं खो गया है। उनकी मृत्यु से पूरे विश्व की भी अतुलनीय क्षति हुई है, जो कभी पूरी नहीं हो पाएगी।''

'कर्मयोगिनी' का प्रकाशन बंद होने के बाद निवेदिता पाठशाला के ही कार्य में मग्न हो गईं, किंतु धनाभाव में उन्हें स्कूल की दो अन्य शाखाएँ भी बंद करनी पड़ीं। वे निरंतर अपने सपनों को साकार करने की दिशा में संघर्षरत थीं, क्योंकि वह भूली नहीं थी कि यह केवल उनका नहीं, उनके दिवंगत गुरु विवेकानंदजी का भी सपना था।

□

एक और हिमालय यात्रा

सिस्टर निवेदिता भारत के कोने-कोने को अपने गुरु की तरह प्राणपण से चाहने लगी थीं। जब भी भारत-भ्रमण का अवसर मिलता, वे कभी न चूकतीं। भारत की अनेकता में एकता के प्रत्यक्ष दर्शनों का लाभ भी उन्हें मिलता था। उन्होंने कई यात्राएँ तो व्याख्यानों, भाषणों व समारोहों की अध्यक्षता के लिए की थीं, किंतु इस बार वे तीर्थयात्रा के लिए जाना चाहती थीं।

स्वामी विवेकानंद को हमेशा से ही हिमालय के सुरम्य, एकांत व नैसर्गिक वातावरण से मोह रहा। निवेदिता भी हिमालय की वादियों में जाकर असीम शांति और सुख का अनुभव करतीं।

उन्होंने डॉ. बोस व उनकी पत्नी तथा भतीजे अरविंद मोहन बोस के साथ केदारनाथ व बदरीनाथ जाने का कार्यक्रम बनाया। वे इस तीर्थयात्रा के नाम से बेहद रोमांचित थीं।

इस यात्रा का आरंभ हरिद्वार से होता था। जहाँ उनकी भेंट रामकृष्ण मठ सेवाश्रम के प्रमुख व संस्थापक स्वामी कल्याणानंदजी से हुई। उन्होंने यात्री दल को हरिद्वार के सभी पवित्र स्थलों व मंदिरों के दर्शन करवाए, फिर सबने ब्रह्मकुंड में गंगापूजन की विधि भी देखी। निवेदिता ने गंगाजल को अंजुलि में भर आँखों से लगाया तो मानो रोम-रोम तृप्त हो गया।

आगे की यात्रा के लिए उन्हें एक पुरोहित का साथ मिला, जो उनका मार्गदर्शन करने वाले थे। उन दिनों तीर्थयात्रियों को इतनी सुविधाएँ नहीं मिलती थीं। उनकी तत्काल बुद्धि व साधन पटुता ही तीर्थयात्रा के मार्ग की असुविधाओं का हल निकालती थी। पुरोहित महोदय ने अपना कर्तव्य बखूबी निभाया।

केदारनाथ की जय! एक-दूसरे को देखते ही तीर्थयात्री परस्पर केदारनाथ का जयघोष करते। निवेदिता के लिए यह आश्चर्य का विषय था कि किस प्रकार तीर्थयात्रा अपरिचितों को भी मैत्री की डोर में बाँध देती है। उस यात्रा के बाद वे लोग चाहे जीवन में कभी न मिलें, किंतु उस समय विशेष के लिए सभी एक-दूजे के परम हितैषी व बंधु बन जाते हैं।

दल में किसी को भी कोई समस्या आन पड़े तो लोग परिवार के सदस्यों की तरह उसका निराकरण करते हैं। दल में विभिन्न भाषा-भाषी प्रेमभाव से चलते हैं। यदि भाषा न भी समझ में आए तो क्या, संकेतों से तो काम चल ही जाता है। यहाँ सभी व्यक्ति केवल एक ही श्रेणी के हो जाते हैं—भक्त व श्रद्धालु! आस्था उनका धर्म और प्रेम उनकी जाति! कुछ प्रगल्भता से घुल-मिल जाते हैं तो कुछ चुपचाप मन में कोई मंत्र बुदबुदाते चलते हैं।

निवेदिता अपने साथियों के साथ किसी चट्टी में रात बितातीं और सूर्योदय होते ही दल आगे निकल पड़ता। यात्रा की अंतिम खड़ी चढ़ाई इतनी सरल न थी, किंतु सभी शिव-शंभु की जय-जयकार करते पार कर ही गए।

दोपहर में केदारनाथ मंदिर के द्वार बंद हो गए, अत: उन्हें दर्शनों के लिए शाम तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। जिसने ऊँचे पहाड़ों पर चाँदनी रात का आकाश देखा हो, वही उसके सौंदर्य को जान सकता है। तारे यों जगमग करते दिखते हैं, मानो किसी ने आँचल को मोतियों से जड़ दिया हो।

निवेदिता अपने यात्रा-वृत्तांत 'केदारनाथ ऐंड बदरीनारायण : ए पिलग्रिम्स डायरी' में लिखती हैं कि उन्होंने सबसे ऊपर वाली सीढ़ी से देखा तो घने अंधकार में तीर्थयात्रियों का एक लंबा प्रवाह ऊपर की ओर आता दिखा। ऐसा लग रहा था, जाने कितनी दिशाओं से जनसमूह एक ही मिलन-बिंदु केदारनाथ की ओर बढ़ रहा था। पृष्ठभूमि से उठते घंटानाद व आरती के स्वर ने सारे वातावरण को एक पावन रंग से रँग दिया था।

वे इसे अपने जीवन के अविस्मरणीय दृश्यों में से एक मानती हैं। राह में मिलने वाले कई श्रद्धालु तीर्थयात्रियों ने भी उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ी। दो वृद्ध महिलाएँ बदरीनारायण की यात्रा से लौट रही थीं। वृद्धावस्था के भार से झुकी कमर वाली एक वृद्धा कठिन चढ़ाई पर लड़खड़ा गई। निवेदिता ने सहारा दिया तो उसने हँसकर कहा कि अब तो कोई भय नहीं रहा। नारायण के दर्शन कर लिये, अब कुछ भी हो जाए कोई अंतर नहीं पड़ता।

निवेदिता के लिए अटूट श्रद्धा व विश्वास किसी प्रेरणा से कम नहीं थे। वे प्राय: एक अंधे तीर्थयात्री का भी उल्लेख करतीं, जिसने पत्थरों के स्पर्श के सहारे अकेले ही तीर्थयात्रा पूरी की थी।

इस तीर्थयात्रा के संस्मरण आजीवन उनके मानसपटल पर छाए रहे। वे प्राय: छात्राओं को उन दो वृद्धाओं के विषय में बतातीं, जो कड़ाके की सर्दी में भी अलकनंदा के ठंडे जल में स्नान करके सूर्य को जल अर्पित करना नहीं भूली थीं।

गीले वस्त्रों में सूर्य को अर्घ्य देतीं श्रद्धालु वृद्धाएँ, निवेदिता के लिए उस तेजोमय भारत का प्रतीक थीं, जो अपनी इन्हीं सनातन परंपराओं के बल पर विश्व का सिरमौर था।

जब सारा दल बदरीनारायण पहुँचा तो सुबह-सुबह मंदिर के द्वार खुलने की प्रतीक्षा करने लगा। निवेदिता भी बदरी विशाल के दर्शनों के लिए उत्सुक थीं, किंतु कट्टरपंथी पंडितों ने उनके प्रवेश के लिए मनाही कर दी।

जन्म से विदेशिनी निवेदिता के लिए मंदिर के द्वार बंद करने वाले पंडित को कहाँ पता था कि वह तो तन-मन-धन से भारतीय हो चुकी हैं। क्षण भर के लिए तो वे भी चौंकीं, किंतु फिर स्वयं ही पाँव पीछे हटा लिया, क्योंकि उन्होंने आरंभ से ही भारत की परंपराओं व मान्यताओं का आदर किया था और आज भी वह उनकी अवज्ञा नहीं करना चाहती थीं।

□

मानसिक आघातों की शृंखला

निवेदिता तीर्थयात्रा से वापस लौटीं तो श्रीमती बुल की बीमारी की सूचना मिली। श्रीमती बुल अर्थात् धीरा माता—वे उनके लिए सखी, माँ, मार्गदर्शिका व शुभचिंतक सबकुछ थीं। श्रीमती बुल का गिरता स्वास्थ्य निवेदिता के लिए चिंता का विषय था, किंतु वे अभी इतनी जल्दी दोबारा पश्चिम नहीं जा सकती थीं, अत: पत्रों द्वारा उनका हौसला बढ़ातीं।

श्रीमती बुल ने उन्हें पाठशाला चलाने में, रचनाओं को प्रकाशित करवाने में तथा जगदीश चंद्र बोस के कार्य में भी काफी सहायता की थी। निवेदिता की कई भावी परियोजनाएँ उन्हीं पर निर्भर थीं।

उस समय कई प्रकार के कार्य व परियोजनाएँ अधूरे थे, किंतु निवेदिता स्वयं को काफी अशक्त पा रही थीं। यही लग रहा था कि संभवत: वे अपने अधूरे कार्य पूरे नहीं कर पाएँगी। इसी विषय में उन्होंने श्रीमती बुल को पत्र भी लिखा था।

जब वे गरमी की छुट्टियों में दार्जिलिंग पहुँचीं तो तार द्वारा श्रीमती बुल की खराब हालत की सूचना मिली। वे फौरन उनके पास जा पहुँचीं। श्रीमती बुल की संभावित मृत्यु के समाचार से ही उनका दिल दहल उठा था।

धीरा माता निवेदिता को देखते ही अपना धीरज खो बैठीं और फूट-फूटकर रो पड़ीं। लंबे रोग ने उनकी सहनशीलता व निर्भीकता छीन ली थी। निवेदिता के जाने से उनके मन को काफी सांत्वना मिली। वे दोनों मिलकर बीती बातें करती रहीं। दोनों के पास स्वामीजी की मधुर स्मृतियों का भंडार था। प्राय: स्वामीजी की बातें करते-करते वे उन सुनहरे दिनों की यादों में खो जातीं। बेलूर, अल्मोड़ा,

कलकत्ता व कश्मीर आदि कितने ही स्थानों पर वे एक-दूसरे की सहयात्रिणी रही थीं। स्वामीजी के उपदेशों का अनमोल खजाना उनके पास था।

उन दिनों निवेदिता स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' का संपादन कर रही थीं। समय पाते ही वे श्रीमती बुल को उसके अनुच्छेद पढ़कर सुनातीं। इसी दौरान उन्होंने भारतीय स्त्रियों की वर्तमान स्थिति पर 'ए प्रेजेंट पोजीशन ऑफ विमैन' नामक निबंध भी लिखा और उसे लंदन के यूनिवर्सल रेस कांग्रेस को भेजा।

श्रीमती बुल की सेवा से बचे समय में वे लेखन कार्य करतीं या सार्वजनिक वाचनालय में चली जातीं। श्रीमती बुल के पास उनकी बेटी ओलिया बुल व भाई ई.जी. थोर्प भी थे। न जाने क्यों, ओलिया के मन में निवेदिता के लिए वितृष्णा का भाव उत्पन्न हो गया। उसे लगने लगा कि वे उसकी माँ की संपत्ति हड़पने के लोभ में वहाँ टिकी हैं। निवेदिता को यह जानने में देर नहीं लगी कि उस घर में उनका रहना श्रीमती बुल के संबंधियों के संदेह का कारण बन रहा है, किंतु वे ऐसी विषम स्थिति में श्रीमती बुल का साथ कैसे छोड़ देतीं। किसी मरणासन्न व्यक्ति की प्रसन्नता के लिए थोड़ा अपयश भी सहना पड़े, तो भी कोई बात नहीं।

ओलिया तक उनकी ऐसी सोच कहाँ से पहुँचती। परिणामत: दिन-ब-दिन आपसी संबंध बिगड़ते चले गए। निवेदिता सदा ईश्वर से यही प्रार्थना करतीं कि उस अनचाहे वातावरण में भी अपनी सखी की अंतिम सेवा के लिए बनी रह सकें, अपना कर्तव्य निभा सकें। श्रीमती बुल ने जीवन में उन्हें सदैव संबल दिया था। आज जब उन्हें उनकी आवश्यकता थी तो वह स्वार्थी कैसे बन जातीं।

उन्होंने बुल मैक्लाउड को पत्र लिखते हुए कहा कि वे उनके तथा श्रीमती बुल के लिए प्रार्थना करें। वे निवेदिता के लिए ईश्वर से धैर्य, स्नेह व शांति माँगें तथा श्रीमती बुल को उनके अंतिम समय में मानसिक शांति देने के लिए प्रार्थना करें।

श्रीमती बुल के लिए प्रार्थना करने के सिवा उनके पास कोई उपाय नहीं था। जब वे एक दिन उनके लिए प्रार्थना करने चर्च गईं तो उन्होंने ईसा की माँ मैडोना के स्थान पर माँ शारदा के दर्शन किए। उन्होंने पत्र में श्रीमाँ को इस विषय में लिखा था, जिसका अन्यत्र उल्लेख किया गया है।

१८ जनवरी, १९११ को श्रीमती बुल चल बसीं। निवेदिता इस क्षण के लिए तैयार थी, किंतु वियोग की पीड़ा तो होनी ही थी। वे शीघ्रातिशीघ्र अपनी कार्यस्थली भारत लौटना चाहती थीं, किंतु श्रीमती बुल की वसीयत के कारण

रुकना पड़ा। वे निवेदिता तथा श्री बोस के लिए कुछ धनराशि छोड़ गई थीं।

ओलिया को तो उन पर यहाँ तक शक था कि उन्होंने ही उनकी माँ के प्राण लिये हैं। उनकी माँ को विष दिया है। निवेदिता वहाँ से जाने के सिवा कर ही क्या सकती थीं। एक तो प्रिय सखी की मृत्यु और ऊपर से ओलिया के ऐसे अभियोग! उनका मन एक दारुण वेदना से भर उठा।

निवेदिता अपनी एक सखी कुमारी एलिस लांगफेलो के यहाँ चली गईं। ओलिया ने माँ की वसीयत पर विवाद खड़ा कर दिया। जब मामला कानूनी काररवाई तक जा पहुँचा तो निवेदिता को वहाँ रुकना व्यर्थ जान पड़ा। वे श्री थोर्प को श्रीमती बुल की संपत्ति का उत्तरदायित्व सौंपकर भारत लौट आईं। इससे पूर्व लंदन तथा पेरिस में अपने मित्रों से आखिरी बार मिलीं।

भारत लौटीं तो स्वामी सदानंदजी की मृत्यु से उन्हें गहरा मानसिक आघात लगा। स्वामी सदानंद ही तो स्वामीजी की मृत्यु के बाद से उनके मित्र, सहयोगी व साथी रहे थे। कलकत्ता में श्रीमाँ ही उनके तप्त-दग्ध हृदय को शांति दे सकती थीं। माँ उस समय दक्षिण भारत की यात्रा से वापस लौटी थीं। श्रीमाँ से मिलकर उनके मन की पीड़ा शांत हो गई। बेलूर मठ में वे स्वामी ब्रह्मानंद तथा तूर्यानंदजी से मिलीं।

गरमियों की छुट्टियों में वे मायावती गईं तथा श्री बोस के नए ग्रंथ लेखन में सहायता की। कलकत्ता वापस लौटने पर चिंताएँ फिर से सामने आ गईं। सबसे बड़ी समस्या थी 'पाठशाला का खर्च'। श्रीमती बुल के मृत्युपत्र के अनुसार मिलने वाली धनराशि का मामला उलझा हुआ था। पाठशाला का भविष्य अधर में था।

यदि निवेदिता चाहतीं तो उन्हें आसानी से ब्रिटिश सरकार की मदद मिल जाती, किंतु वे इस कार्य के लिए विदेशी सहायता स्वीकार नहीं करना चाहती थीं। कई दिन बाद श्री थोर्प के वकील द्वारा सूचना मिली कि अब श्रीमती बुल की अंतिम इच्छानुसार निवेदिता की पाठशाला को कुछ धनराशि मिल सकती है। पाठशाला के भविष्य की ओर से थोड़ा निश्चिंत होते ही निवेदिता फिर से व्यथित हो उठीं।

कारण था, स्वजन तथा प्रियजनों की मृत्यु। पहले स्वामी विवेकानंद की माँ भुवनेश्वरी देवी और फिर दो दिन बाद उनकी माँ का देहावसान। यही आघात कम नहीं थे कि उन्हें श्रीमती बुल की पुत्री ओलिया के आकस्मिक निधन का भी समाचार मिला। नि:संदेह ओलिया अंत समय में उनसे विद्वेष रखने लगी थी,

किंतु उन्होंने एक-दूसरे के साथ काफी वक्त बिताया था। इसके बाद स्वामी विवेकानंदजी के समर्पित साथी स्वामी रामकृष्णनंदजी की मृत्यु का समाचार पाकर तो वह मानो टूटसी गईं।

दक्षिण भारत के व्याख्यानों के दौरान निवेदिता का संपर्क स्वामी रामकृष्णानंदजी से हुआ था। उन्होंने ही तो निवेदिता को स्वामीजी का जीवन-चरित्र लिखने की प्रेरणा दी थी। स्वामी रामकृष्णानंदजी वर्षों से पूरी निष्ठा, श्रद्धा तथा लगन से स्वामीजी का कार्य करते रहे थे। उनकी आध्यात्मिकता ने भी निवेदिता को विशेष रूप से प्रभावित किया था।

केवल मृत्यु ने ही वियोग के अवसर पैदा नहीं किए थे। सांसारिक परिस्थितियों ने भी स्वजन से अलग होने के हालात बना दिए। निवेदिता की सहायिका क्रिस्टीन कई वर्षों से, उनके साथ स्कूल का कार्य सँभालती आ रही थीं। उन पर पाठशाला की जिम्मेवारी छोड़कर निवेदिता निश्चिंत थीं, किंतु जाने क्या वैचारिक मतभेद हुआ कि क्रिस्टीन ने अचानक घोषणा कर दी कि वे उनके विद्यालय के लिए काम नहीं करेंगी। वे ब्रह्मसमाजी कन्या पाठशाला में अध्यापन कार्य करेंगी।

यूँ क्रिस्टीन का अचानक विमुख होना काफी पीड़ादायी था। क्रिस्टीन तो उन्हें सदा ही प्रिय रही थीं। वे अकसर अपने मित्रों से उसकी कर्मठता का उल्लेख किया करती थीं। निवेदिता अपने कार्यों के बोझ तले दबती जा रही थीं। गिरते स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने अपने लेखन-कार्य तथा डॉ. बोस के लेखन-कार्य में सहायता जारी रखी और स्कूल भी सँभालती रहीं।

इसी बीच सिस्टर सुधीरा ने भी उनका साथ छोड़कर ब्रह्मसमाजी कन्या पाठशाला में पढ़ाने का निर्णय ले लिया। संभवत: वह भी क्रिस्टीन के प्रभाव में आकर ऐसा कर रही थीं। निवेदिता ने उसे वापस लौटा लाने की, भरपूर कोशिश की, लेकिन कुछ न हो सका।

यद्यपि सिस्टर क्रिस्टीन व सुधीरा को बाद में अपनी गलती का एहसास हुआ और उन्होंने निवेदिता से मिलने का मन भी बनाया, किंतु तब तक निवेदिता इस नश्वर संसार से बहुत दूर जा चुकी थीं।

□

महाप्रयाण

निवेदिता दुर्गापूजा की छुट्टियों में दार्जिलिंग जाने की तैयारी करने लगीं। बसु परिवार भी उनके साथ था। सबकुछ यथावत् ही तो था, किंतु जाने कैसा सूनापन छाने लगा था। वे मन-ही-मन अनुभव कर रही थीं कि उनके महाप्रयाण का समय हो चला था। उन्होंने जाने से पूर्व योगिनी माँ के चरण-स्पर्श करते हुए कहा था—''माँ! पता नहीं क्यों, बस ऐसा लगता है कि अंत निकट है।''

प्रियजन व स्वजनों की असमय मृत्यु के समाचारों ने उन्हें अंदर से खोखला कर दिया था। जीवन के जिस उद्देश्य के लिए उन्होंने सभी सुख-सुविधाओं तक को तिलांजलि दे दी थी, वही पहले से भी दूर दिखने लगा था। सदा की स्नेही सहायिकाओं ने अकारण साथ छोड़ दिया था। विद्यालय के लिए मिलने वाली आर्थिक सहायता बंद होने की नौबत आ गई थी। इन्हीं मानसिक आघातों के बीच वह दार्जिलिंग के 'रे विला' में पहुँचीं।

कुछ दिन शांति से बीत गए। एक दिन सबने सुदूर 'संडक फू' चोटी पर जाने का मन बनाया। वहाँ तक पहुँचने के लिए दो-तीन दिन तक घोड़े पर सवारी करनी पड़ती थी। तैयारी पूरी थी, किंतु उन्हें उसी दिन खूनी पेचिश होने लगी। कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. नीलरतन सरकार भी उन दिनों वहीं थे, उन्होंने उपचार किया, किंतु विशेष लाभ नहीं हुआ।

निवेदिता तो जैसे जान चुकी थीं कि विदा की वेला आ पहुँची है। दिन-ब-दिन जीवनी-शक्ति घटने लगी। वे पूरे धैर्य से कष्ट सह रही थीं। प्रतिदिन अभ्यागतों को यही विश्वास दिलातीं कि उन्हें कहीं दर्द नहीं हो रहा, वे पहले से स्वस्थ अनुभव कर रही हैं।

अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने 'डेथ-बिलंड व प्ले' नामक लेख

लिखे थे। उन दिनों वे मन में एक विलक्षण व अलौकिक शांति का अनुभव करने लगी थीं और उनके लेखों में भी वही मन:स्थिति साफ दिखती है। यह वही अलौकिक शांति थी, जो किसी महाप्रयाण के पथ पर जाने वाले पथिक के मन पर छा जाती है।

ऐसा लगता था कि इससे पूर्व मृत्यु के विषय में वे जो कुछ भी लिख चुकी थीं, उसे सही मायनों में महसूस कर पा रही थीं—

''कल रात मुझे अनुभव हुआ कि मैं अचेतन संसार से एकाकार होकर एक विचित्र अवस्था में प्रवेश करके इस संसार को भेदते हुए आगे-आगे जा रही हूँ। इसे चिंतन की एक स्थिति या 'मन' कह सकते हैं। कोई-कोई मृत्यु का नाम भी दे देता है। चूँकि यह अवस्था अवचेतन नहीं है, अत: हम इसे व्यापक नहीं कह सकते, पर शरीर की कल्पना से परे यह अवस्था हमें शरीर भाव से कहीं दूर गहराई तक ले जाती है। यदि हमें अपने दिवंगत प्रियजनों के बारे में सोचने से सुख मिलता है तो वे वस्तुत: शारीरिक दृष्टि से हमारे बहुत निकट आ सकते हैं और हम फिर भी एक अनंत विस्तारपूर्ण स्वतंत्रता तथा आनंद का अनुभव कर सकते हैं।

''तब मैंने ईश्वर के बारे में सोचा, जो इस प्रकार असीम जगत् में व्याप्त है और इस तरह हमने इन दोनों की सीमारेखा पर खड़े होकर, असीम जगत् में निस्सीम ईश्वर अर्थात् दोनों का ही स्वर्गिक आनंद लेना चाहा। इस बारे में मैं जितना अधिक सोचती हूँ तो लगने लगता है कि चिंतन की ओर मन की वापसी को ही मृत्यु कह सकते हैं।

''…इसका आरंभ एक लंबे मौन से होता है, जबकि मन अपने अस्तित्व की विशिष्ट विचार-शृंखला में डूबा रहता है। यह विचार-शृंखला समस्त विचारों, क्रियाकलापों तथा अनुभवों का अवशिष्ट पुंज मात्र होती है। इन्हीं क्षणों में आत्मा अपना चोला छोड़ रही होती है और एक नए जीवन की शुरुआत हो चुकी होती है।

''क्या इस प्रकार पूरे जीवन को प्रेम तथा आनंद से भरा साम्राज्य माना जा सकता है, जिसमें विकारों की एक भी लहर न उठी हो। हम जीवन के अंतिम पलों में जीवन की सब कटु यादों को भुलाकर अनंत में अहं के विचार से मुक्त हो सकें तथा संसार की समस्त इच्छाओं व कष्ट निवारण के लिए शांति और मंगलकामना हेतु स्वयं को अर्पित कर दें।''

निवेदिता मृत्यु को काफी समीप अनुभव कर रही थीं, अत: प्राय: उसी

के विषय में बातचीत करतीं। उन्होंने श्रीमती अबला बोस से विनती की कि उनके स्वास्थ्य के विषय में उन्हें गुमराह न किया जाए तथा स्पष्ट रूप से बताया जाए कि उनका अनुमानित जीवन-काल कितना शेष है।

निवेदिता एकांत पाते ही अपनी प्रिय रुद्र स्तुति में खो जातीं। ईश्वर से एकाकार होने के क्षण निकट आते जा रहे थे। दर्द असहनीय हो चला, किंतु उन्होंने मुख पर वेदना की एक भी शिकन नहीं आने दी।

१३ अक्तूबर, १९११ को अभी सूर्योदय होने में समय था और निवेदिता जीवन और मृत्यु के संधिकाल से गुजर रही थीं। मृत्यु के साथ अंतिम घड़ी तक कठिन संघर्ष करने के बाद वे अनंत पथ की ओर चल पड़ीं। उसी समय सूर्य ने उनके कमरे को अपनी उज्ज्वल किरणों से आलोकित कर दिया मानो सूर्य किरणें नवीन पथ पर उनका स्वागत कर रही थीं।

दार्जिलिंग में निवेदिता की मृत्यु का समाचार फैलते देर नहीं लगी। कलकत्ता के कई गण्यमान्य व्यक्ति उस समय दार्जिलिंग में उपस्थित थे। वे सभी सिस्टर निवेदिता को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने व उनकी शवयात्रा में सम्मिलित होने के लिए आए। दार्जिलिंगवासी भी इस महान् नारी की अंतिम यात्रा में मौन भाव से चल रहे थे। सबने अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी श्रद्धांजलि दी।

रामकृष्ण मिशन के गणेन महाराज आरंभ से ही निवेदिता के सहयोगी रहे थे। उन्होंने उनका अंतिम संस्कार किया। उस पवित्र भूमि पर निवेदिता की समाधि बनाई गई और शिलालेख खुदवाया गया—

''जिसने अपना सर्वस्व भारत को अर्पित कर दिया, वह भगिनी निवेदिता यहाँ चिर-विश्राम में लीन हैं।''

आज भी श्रद्धालुगण दार्जिलिंग जाने पर भगिनी निवेदिता की समाधि पर जाना नहीं भूलते। उस शांत व पवित्र स्थली पर आज भी निवेदिता की प्रिय बौद्ध प्रार्थना की पंक्तियाँ गुंजायमान हैं, जो उन्होंने स्वयं अंग्रेजी में अनूदित कर मित्रों में बँटवाई थीं—

उन सभी को, जिनमें जीवन है,
शत्रुओं के बिना, बाधाओं के बिना,
दुखों पर विजय पाते हुए तथा
प्रफुल्लित होकर अपने मार्ग पर
निर्बाध आगे बढ़ने दो! □

माँ शारदा और निवेदिता

श्रीरामकृष्णदेव की धर्मपत्नी श्रीमाँ शारदा देवी का भगिनी निवेदिता के जीवन में काफी सकारात्मक प्रभाव रहा। श्रीमाँ व निवेदिता का आत्मीय स्नेह बंधन आजीवन अटूट रहा। पहली ही भेंट में श्रीमाँ उनसे 'मेरी बेटी' कहकर बहुत ही अपनत्व से मिलीं। पूजनीय श्रीमाँ ने विदेशी महिलाओं के साथ बैठकर भोजन किया और सिद्ध कर दिया कि वे भी उन विदेशी महिलाओं के प्रेम व आस्था को मान देती थीं, जो इतनी दूर से उनके देश की माटी को अपनाने आई थीं। इस प्रकार उन्होंने इन्हें हिंदू समाज में समाहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निवेदिता ने इस प्रथम भेंट के विषय में अपनी सखी को लिखा था—

''वे बहुत प्यारी, नम्र व सुसंस्कृत महिला हैं, मानो माधुर्य, सहृदयता तथा प्रेम की मूर्ति सजीव रूप में हमारे सामने खड़ी हों। अतिथि वहाँ श्रीमाँ के चरणों में फल अर्पण करते हैं। हमने भी श्रीमाँ के चरणों में फल अर्पित किए। आश्चर्य व प्रसन्नता की बात यह है कि उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। उनकी इस उदारता ने हम सबको समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया है तथा हम गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। उनके व्यवहार और उदारता ने मेरे भावी कार्य को इतना सरल बना दिया है, जितना और किसी तरह से संभव नहीं था।''

निवेदिता ने आग्रहवश श्रीमाँ के घर में रहने को स्थान तो पा लिया था, किंतु तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार उनका भारतीय विचारधारा में स्थान पाना आसान नहीं था। श्रीमाँ के साथ उनकी कुछ महिला संबंधी एवं

श्रीरामकृष्णदेव की भक्तिनें भी रहती थीं। उनके लिए एक विदेशी महिला को स्वीकारना इतना सहज नहीं था।

उन पुरातनपंथी वृद्ध महिलाओं को विदेशी महिला की उपस्थिति से मानसिक आघात पहुँचा था, किंतु श्रीमाँ ने निवेदिता को न केवल परिवार में बल्कि अपने हृदय में भी स्थान दे दिया था। निवेदिता को कुछ समय पश्चात् रहने के लिए घर मिल गया, किंतु श्रीमाँ के आग्रह पर वे दोपहर तथा रात का समय उन्हीं के यहाँ बितातीं।

निवेदिता अपने पूरे परिवार को छोड़कर भारत आई थीं, किंतु कुछ ही समय में श्रीमाँ तथा उनकी सखियों के संग-साथ ने पारिवारिक स्नेह के अभाव को पूरा कर दिया।

गोपाल की माँ श्रीमाँ की सखी थीं, उन्होंने भी निवेदिता को सहृदयता से अपना लिया। निवेदिता शीघ्र ही वहाँ के स्नेहपूर्ण वातावरण में रम गईं। वहीं उन्होंने भारतीय सभ्यता-संस्कृति को पौराणिक गाथाओं व धार्मिक प्रसंगों के माध्यम से जाना और उनका धर्म पहचाना। वहीं उन्होंने एक आम हिंदू गृहस्थ के संस्कारों का परिचय प्राप्त किया, जिनमें परंपराओं व रूढ़ियों का ताना-बाना गुँथा हुआ था। शीघ्र ही उन्होंने श्रीमाँ के आशीर्वाद तथा कृपा से हिंदू जीवन-शैली को न केवल अपना लिया बल्कि आत्मसात् भी कर लिया।

निवेदिता श्रीमाँ के घर में सभी महिलाओं के साथ सूर्योदय से पूर्व ही उठ जातीं, फिर सभी जप करती। सूर्योदय के पश्चात् घर की साफ-सफाई तथा स्नान-पर्व समाप्त होता। श्रीमाँ पूजा करने बैठतीं तो वे पूजा के आवश्यक साधन व उपादान जुटाने में मदद करतीं, मानो श्रीमाँ के सान्निध्य में वे एक हिंदू गृहस्थ महिला के जीवन-मूल्यों का व्यावहारिक प्रशिक्षण पा रही थीं।

श्रीमाँ की पवित्र उपस्थिति के विषय में उन्होंने लिखा था—''बुद्धिमत्ता तथा माधुर्य का सबसे सरल रूप यदि किसी स्त्री को प्राप्त हो सके, तो वे माँ शारदा ही हैं, उनके साध्वी भाव में उतनी ही पवित्रता है, जितनी उनकी सादगी में है। उनका जीवन प्रार्थना की एक क्रमबद्ध शृंखला है, जिसमें अपूर्व शांति है और स्थिरता भी।

बाद में निवेदिता को जब भी अवसर मिलता, श्रीमाँ के दर्शनों के लिए जातीं। वे श्रीमाँ की लाड़ली-दुलारी कन्या थीं और श्रीमाँ उनकी जन्मदात्री 'माँ'। उन्होंने अपना नियम बना रखा था कि कलकत्ता से बाहर जाने का

प्रसंग आने पर वह माँ का आशीर्वाद लेकर ही निकलती थीं।

धीर-गंभीर निवेदिता श्रीमाँ के पास जाते ही नन्हीं बच्ची बन जातीं, जिसे अपनी माँ के लिए कुछ करने में असीम सुख का अनुभव होता था। यद्यपि उनकी आर्थिक दशा इतनी अच्छी नहीं थी कि वे माँ के लिए कुछ मनचाहा ले पातीं, किंतु जब भी कोई अवसर पातीं, माँ को कोई-न-कोई उपहार अवश्य देतीं।

माँ के लिए भी बेटी के वे उपहार किसी अनमोल खजाने से कम नहीं थे। श्रीमाँ उनके हर उपहार को सँभालकर रखतीं, फिर चाहे वह ऊनी गुलबंद हो या जर्मन सिल्वर की डिबिया मानो इन छोटी-छोटी भेंटों से निवेदिता के असीम अनुराग का सागर छलकता था।

एक बार श्रीमाँ ने भी उनके लिए पंखा बनाकर भेंट किया था। निवेदिता उस पंखे को माथे और हृदय से लगा-लगाकर आनंद-विभोर हो उठी तो वे हँस दीं—''देखो तो, इतनी छोटी सी तुच्छ वस्तु को भी कितना मान दे रही है। कैसी श्रद्धा है इस लड़की में···यह तो सही मायनों में नरेन की ही पुत्री है।''

निवेदिता की पाठशाला में श्रीमाँ का आगमन प्रसन्नता व उल्लास का माध्यम बनता। पूरी पाठशाला को दुलहन की तरह सजाया जाता। श्रीमाँ के बैठने के लिए विशेष आसन रखा जाता। श्रीमाँ के प्रवेश-द्वार पर आते ही निवेदिता उनका आशीर्वाद लेतीं। स्कूल की लड़कियाँ भी माँ के चरणों में पुष्प अर्पित करतीं।

निवेदिता स्वामीजी के आग्रह पर भारतीय महिलाओं की उन्नति के लिए आई थीं, अत: भारतीय नारी के उदात्त व पवित्र रूप की कल्पना तथा उसे देख पाने का कौतूहल स्वाभाविक ही था। उन्होंने श्रीमाँ में आदर्श भारतीय नारी की कल्पना का साकार रूप पाया। भारतीय स्त्रियों को आधुनिक शिक्षा व विचारों से जोड़ने से पहले आवश्यक हो गया था कि वे स्वयं उन मूल्यों को समझें, जिन्हें सदियों से भारतीय स्त्रियाँ परंपरा व रीति-रिवाजों के साथ सहेजती आई थीं। श्रीमाँ ने उन्हें भारतीय हिंदू नारी की महानता से परिचित करवाया।

निवेदिता उन्हें मातृत्व का साकार रूप ही कहती थीं। एक स्थान पर वे स्नेहवश कहती हैं—''माँ यानी एक उत्कट स्वरूप का प्रेमभाव, जो हममें से किसी को भी, कभी भी अस्वीकृत नहीं कर सकता। हमारे साथ हमेशा रहनेवाला

आशीर्वाद, एक सामीप्य, जिससे दूर जाकर हमारा विकास हो ही नहीं सकता। माँ यानी एक पवित्रता, जहाँ किसी प्रकार की कृष्ण छाया नहीं है।''

श्रीमाँ के सामीप्य ने निवेदिता को भी बहुत जल्द एहसास करा दिया कि वे उच्च साध्वी पद पर थीं और गहन आध्यात्मिक स्तर पर थीं। संभवत: यही वजह थी कि एक बार बोस्टन के गिरजाघर में प्रार्थना के दौरान निवेदिता ने माँ मैरी के स्थान पर शारदा देवी के दर्शन किए थे। उन्होंने पत्र में माँ को लिखा—

''...माँ श्रीरामकृष्णदेव ने आपके रूप में विश्व के लिए दिव्य प्रेम से लबालब भरा हुआ पात्र रख छोड़ा है। आप निश्चय ही ईश्वर द्वारा निर्मित एक अद्‌भुत कलाकृति हैं। यह तो सच ही है कि ईश्वर निर्मित सभी कलाकृतियाँ मूक पवित्र शांति व निस्तब्धता लिये हुए हैं। वे धीरे-धीरे बिना एहसास कराए हमारे जीवन में प्रवेश कर जाती हैं। हवा, सूर्य का प्रकाश, उद्यानों का माधुर्य तथा गंगा का शीतल जल, ये सभी ईश्वर द्वारा निर्मित वस्तुएँ अद्‌भुत शांति का एहसास कराती हैं और तुम भी इनके समान ही हो।''

□

ममतामयी दीदी : निवेदिता

निवेदिता कन्या पाठशाला की छात्राएँ उन्हें स्नेह से 'दीदी' कहकर पुकारती थीं। पाठशाला छोड़ने के वर्षों बाद भी कोई छात्रा अपनी 'दीदी' को याद करती तो भावुक हो उठती।

निवेदिता के जीवनकाल में कई बार ऐसी परिस्थितियाँ सामने आईं कि पाठशाला को बंद तक करने का निर्णय ले लिया गया, किंतु उनकी इस अध्यापन कार्य के प्रति निष्ठा व लगन हर बार जीत जाती। संभवत: इसका एक कारण यह भी था कि निवेदिता के लिए बोसपाड़ा लेन की वह छोटी सी पाठशाला केवल कन्याओं को शिक्षित करने का माध्यम नहीं थी, वह स्वामीजी के स्त्री-जागृति विचार को मूर्त रूप देने का माध्यम भी थी।

उन्होंने इस विद्यालय के लिए कई कर्मठ अध्यापिकाएँ भी पाईं, जिनमें सिस्टर क्रिस्टीन, सुधीरा, कुमारी बेट व पुष्पा देवी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी व दक्षिणी भारत के दौरे के दौरान ही उन्हें सूचना मिल गई थी कि पाठशाला आरंभ हो गई है।

पहले सिस्टर बेट और फिर भगिनी क्रिस्टीन उनकी सहायता के लिए आगे आईं। निवेदिता व क्रिस्टीन दोनों ही शिशु विद्यालय पद्धति से परिचित थीं, अत: इस नवीन प्रयोग को चालू करने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। छात्राओं ने उसका स्वागत ही किया।

छात्राएँ पढ़ाई के साथ-साथ खेल-कूद, सिलाई आदि भी सीखतीं। जब स्कूल अच्छी तरह से चलने लगा तो दोपहर को महिलाओं को शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था भी की गई।

आस-पड़ोस की महिलाएँ भगिनी निवेदिता व क्रिस्टीन से भली-भाँति परिचित थीं व उनसे स्नेह भी रखती थीं। महिलाएँ दोपहर को ग्यारह से एक के बीच स्कूल में पढ़ने जातीं। इससे घर के काम-काज पर भी असर नहीं पड़ता था। योगिनी माँ, क्रिस्टीन व लावण्यप्रभा ने इस विभाग का दायित्व सँभाला। महिलाएँ बड़े उत्साह से घर का काम-काज निबटातीं, ताकि अपनी इस नई कक्षा का लाभ उठा सकें।

निवेदिता इस प्रगति से बेहद संतुष्ट और प्रसन्न थीं। आश्चर्य होता था कि परदे में रहने वाली, सद्‌गृहस्थ हिंदू महिलाएँ एक यूरोपियन महिला के घर पढ़ने जाने लगी थीं। दरअसल, निवेदिता व क्रिस्टीन की सादी जीवनचर्या, मधुर वाणी व संयम ने सबका दिल जीत लिया था। आस-पास की महिलाएँ भी समय पाते ही उनके यहाँ आ जातीं। यद्यपि उनके पास हाथों से बने घरेलू उपहार होते, किंतु निवेदिता के लिए वे स्नेह भेंटें किसी कोष से कम न होती थीं। कुँआरी, विवाहित तथा विधवा—सभी प्रकार की महिलाएँ एवं युवतियाँ अपने ही प्राकृतिक वातावरण के साथ ध्येय प्राप्ति के लिए अग्रसर थीं। प्रारंभ में पाठशाला का नाम 'श्रीरामकृष्ण कन्या पाठशाला' रखा गया था, किंतु लोग धीरे-धीरे इसे 'विवेकानंद या निवेदिता स्कूल' के नाम से जानने लगे। अब यह 'रामकृष्ण शारदा मिशन भगिनी निवेदिता कन्या पाठशाला' के नाम से जाना जाता है।

निवेदिता अपनी प्रत्येक शिष्या के व्यक्तित्व निर्माण के लिए एक व्यक्तिगत अभिलेख भी संकलित रखती थीं। कोई लड़की किस स्वभाव की है, उसे किस कौशल में निपुणता प्राप्त है। कौन सी भाषा आसानी से सीख लेती है, किस तरह का कार्य करना अधिक पसंद करती है, कौन सी लड़की अपनी हीन आर्थिक स्थिति के कारण लज्जा अनुभव करती है, कौन सी लड़कियाँ सादा वेशभूषा में आती हैं, किस लड़की को थोड़ा सुधारना होगा या किसे प्रशंसा द्वारा प्रोत्साहित करना होगा आदि।

इस प्रकार हर बच्ची पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता। आज विद्यालयों में बालकों के व्यक्तित्व निर्माण के लिए जिन बातों पर ध्यान दिया जाने लगा है, निवेदिता ने तो वर्षों पहले इस जरूरत को पहचाना और पूरा किया।

निवेदिता ने विद्यालय की प्रगति का सारा श्रेय सदा भगिनी क्रिस्टीन को ही दिया। निःसंदेह वे सच्ची लगन से काम करती थीं। जब स्कूल के

लिए स्थान कम पड़ने लगा तो दो मकान छोड़कर एक और मकान किराए पर ले लिया गया।

स्कूल में श्रीरामकृष्णदेव के छायाचित्र के सामने संस्कृत में प्रार्थना के साथ कक्षाएँ लगतीं, फिर 'वंदेमातरम्' का सामूहिक गान भी होने लगा, जबकि उन दिनों इसे सार्वजनिक रूप से गाने पर पाबंदी थी। माँ शारदा भी अपनी लाड़ली की इस पाठशाला पर विशेष स्नेह रखती थीं। वे भी अवसर पाते ही वहाँ अवश्य जातीं। उनके चरणों की पावन धूलि से पाठशाला धन्य-धन्य हो जाती।

भगिनी निवेदिता चाहती थीं कि भारतीय तथा विदेशी स्त्री-पुरुषों को राष्ट्रीय शैक्षणिक कार्य का प्रशिक्षण देने के लिए विश्वविद्यालय की स्थापना हो। इसके अतिरिक्त वे युवावर्ग के लिए एक छात्रावास भी बनाना चाहती थीं। युवकों के मन में देश के प्रति प्रेम जाग्रत् करना चाहती थीं, ताकि वे नि:संकोच भाव से देश की सेवा में जीवन अर्पित कर सकें।

पुष्पादेवी नामक महिला ने भी कुछ समय तक पाठशाला के कार्यों में सहयोग दिया था, किंतु विवाह होने के बाद उन्हें वह कार्य छोड़ना पड़ा, फिर क्रिस्टीन की मदद के लिए सुधीरा आगे आईं। निवेदिता से कुछ समय तक तो दूरी सी बनी रही, किंतु एक बार उनके कोमल अंत:करण को पहचानने के बाद सिस्टर सुधीरा भी उनकी आत्मीया बन गईं।

एक समय ऐसा भी आया जब महँगाई काफी बढ़ गई और पाठशाला के लिए मिलने वाली चंदे की धनराशि कम पड़ने लगी। निवेदिता ने चंदा देने वालों से रकम बढ़ाने की माँग की, किंतु किसी ने भी हामी नहीं भरी।

परिणामत: स्कूल के लिए किराए पर लिया गया घर छोड़ना पड़ा। निवेदिता के ही घर में पूरी पाठशाला चलने लगी। उनके निजी विश्राम तथा सुविधा का प्रश्न ही कहाँ उठता था! घर में हमेशा भीड़ लगी रहती। यद्यपि उनके स्नेही मित्रों ने वह स्थान छोड़कर किसी दूसरी शांत जगह रहने का परामर्श भी दिया, किंतु वे तो वहाँ के स्नेह-तंतुओं से बँधी थीं। उसी गली में तो उन्होंने सच्चे भारतीय अंत:करण को पहचाना था, उसे कैसे त्याग देतीं!

पाठशाला की अनेक योजनाएँ धनाभाव के कारण रुक जाती थीं, किंतु वे जी-जान से पूर्ति करने की चेष्टा करतीं। कठोर अनुशासन में पाठशाला की छात्राओं का व्यक्तित्व निखर रहा था। वहाँ अत्यधिक लाड़ या जिद को कोई

प्रश्रय नहीं दिया जाता था। प्रत्येक आर्थिक स्तर के बच्चे के लिए एक से नियम लागू होते। हालाँकि निवेदिता जरूरतमंद छात्राओं की मदद से भी पीछे न हटती थीं।

कई लड़कियाँ ऐसी थीं, जो अभिभावकों की पाबंदी के कारण पाठशाला नहीं जा पाती थीं। निवेदिता स्वयं उनके घर जाकर उनकी घरेलू समस्याएँ दूर करने की कोशिश करतीं, ताकि पाठशाला तक जाने की राह बन सके।

कन्याओं, महिलाओं व विधवा युवतियों के लिए वाहन की व्यवस्था के कारण भी काफी फर्क पड़ा, क्योंकि जो अभिभावक कन्याओं को अकेले पैदल नहीं भेजना चाहते थे, वे इस वाहन के कारण निश्चिंत हो गए।

निवेदिता स्नेह से उन्हें प्यारी बच्चियाँ कहतीं और छात्राएँ उनका साथ पाकर आनंदित होतीं। कट्टर रूढ़िवादी परिवारों से आई लड़कियों के लिए निवेदिता की पाठशाला एक ऐसे वातायन के समान थी, जिसने उन्हें दुनिया के दर्शन कराए। विविध विषयों के पठन-पाठन के अलावा उन्हें घुमाने भी ले जाया जाता। धनाभाव में दूर की यात्रा तो संभव न थी, किंतु अपने सीमित साधनों के बल पर निवेदिता उन्हें उन दर्शनीय स्थलों की यात्रा पर ले जातीं, जो ज्यादा दूरी पर नहीं थे।

छात्राओं को इन यात्राओं में निवेदिता के मुख से निकले वर्णन को भी सुनने का लोभ रहता था; क्योंकि वे इतिहास की घटनाओं को भी इतनी दक्षता से सुनातीं कि सबकुछ मानो सजीव हो जाता।

छात्राओं को माँ काली के तीनों रूपों का परिचय देने के साथ-साथ स्वामी विवेकानंदजी के महान् विचारों तथा कार्यक्रमों की जानकारी भी दी जाती। वे स्वामी विवेकानंद के महान् आदर्शों को अपनाने तथा उन्हें अपने जीवन में उतारने के लिए प्रस्तुत हों, इसके लिए निवेदिता विशेष रूप से प्रत्यशील रहतीं। छात्राओं के लिए उनका मंत्र था—

''हम भारतीय कन्याएँ हैं। स्वयं ऊँचा उठें व भारत माँ को ऊँचा उठाएँ।''

स्वदेशी आंदोलन के दौरान वे लड़कियों को ब्रह्मसमाज कन्या पाठशाला में ले जातीं, ताकि वे वहाँ की सभाओं में होने वाले भाषणों को सुन सकें और देश की तत्कालीन संघर्षकारी परिस्थितियों से परिचित हो सकें।

'चरखा माँ' की नियुक्ति भी स्वदेशी आंदोलन से जुड़ने की ही एक

कड़ी थी। पाठ्यक्रम में सूत की कताई को भी शामिल किया गया था। एक वृद्ध महिला सभी छात्राओं को चरखा कातने का प्रशिक्षण देती, जिन्हें सब आदर से 'चरखा माँ' कहते थे।

निवेदिता अपनी पाठशाला के पाठ्यक्रम में संस्कृत को भी विषय के रूप में रखना चाहती थीं। छात्राओं द्वारा पामवृक्ष पत्रों पर लिखित संस्कृत श्लोकों को अपने कक्ष में रखने की कल्पना से ही वे रोमांचित हो गई थीं।

उस समय समाज में लड़कियों के विवाह बहुत कम आयु में कर दिए जाते थे। कभी-कभी तो अपनी आयु से कई गुना बड़े व्यक्ति से उनका विवाह हो जाता। दुर्भाग्यवश पति की मृत्यु के बाद उन्हें आजीवन विधवा के रूप में रहना पड़ता।

निवेदिता ऐसी बाल विधवाओं को देख द्रवित हो जातीं। जिस आयु में बालिकाएँ छोटी-छोटी बातें मनवाने के लिए माँ-बाप से जिद करतीं, घर में लाड़ व दुलार पातीं, उसी आयु में कई बाल विधवाएँ विधवा जीवन के कठोर नियमों का पालन करतीं। उनकी छाया से भी परिजन दूर भागते।

वे निवेदिता की विशेष स्नेहपात्रा थीं। जब उन्हें विधवाओं के एकादशी व्रत के विषय में पता चला तो उन्हें दु:ख भी हुआ। ऐसी ही एक कन्या थी 'प्रफुल्लमुखी।' उस बाल विधवा के प्रति उन्हें विशेष अनुराग था। वे प्राय: उसे कुछ-न-कुछ खाने को अवश्य भिजवातीं और पूरी कोशिश करतीं कि उसका पाठशाला जाना नियमित रूप से हो।

पाठशाला की क्रिस्टीन भगिनी पर उन्हें अगाध विश्वास था, जब वे अन्य गतिविधियों में लिप्त होने के कारण स्कूल को समय नहीं दे पाती थीं तो क्रिस्टीन ही सारा भार सँभालती। उनका विचार था कि क्रिस्टीन ही पाठशाला की योग्य संरक्षिका हो सकती हैं, अत: वे उसे ही पाठशाला सौप देंगी, किंतु उनका यह सपना पूरा न हो सका। उनकी मृत्यु से कुछ समय पूर्व उनकी कर्मठ सहायिकाओं ने उनका साथ छोड़ दिया। उनकी असमय मृत्यु के लिए यह पीड़ा भी उत्तरदायी रही।

□

महान् व्यक्तियों के बीच

भगिनी निवेदिता को भारत में अनेक महान् व्यक्तियों से परिचय का सुअवसर प्राप्त हुआ। वे अपनी अपूर्व लेखन क्षमता, रचनाशीलता, बौद्धिकता, स्नेही स्वभाव, देश के प्रति भक्ति, मौलिक विचार, सादगी, संयम व शिष्टभाषिता के बल पर शीघ्र ही समाज के प्रतिष्ठित व गण्यमान्य व्यक्तियों के बीच लोकप्रिय हो गईं।

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर से प्रथम भेंट में ही वे उनकी ओर आकर्षित हुईं। टैगोर को लगा कि वे भी कोई मिशनरी ही हैं तो उन्होंने उनसे आग्रह किया कि वे उनकी पुत्री की शिक्षा का कार्यभार ले लें, किंतु जब वे उनकी योजनाओं से परिचित हुए तो उन्होंने जाना कि निवेदिता बच्चों को विदेशी आदर्श व शिक्षा देने के पक्ष में नहीं थीं। वे चाहती थीं कि बालकों के सम्मुख अपने देश का ही आदर्श रखा जाए।

गुरुदेव ने शिक्षा विषयक विचारों को सुनने के बाद उनसे कहा कि वे पाठशाला के लिए उनका घर ले सकती हैं, किंतु निवेदिता उस समय दूसरी गतिविधियों में व्यस्त थीं, अत: इस ओर ध्यान नहीं दे पाईं।

गुरुदेव एक आंग्ल महिला का भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम देख आश्चर्यचकित थे। निवेदिता ने भी इतनी बंगाली भाषा तो सीख ही ली थी कि उनके साहित्य का रसास्वादन कर सकें। उन्होंने 'काबुलीवाला' का अंग्रेजी अनुवाद भी किया।

बोसपाड़ा लेन में भगिनी निवेदिता के घर के द्वार सदा खुले रहते। अमेरिकी अतिथि, ख्याति प्राप्त हस्तियाँ, गुरुभाई, कलाकर, विद्वान् वैज्ञानिक,

भाषणकर्ता, शिक्षक, देशाटन पर निकले संन्यासी, मठ के सदस्य, महिला समाज व अनेक जाने-अनजाने अतिथि—उस मिलन स्थल पर आने वाले एक सहज स्फूर्त मानसिक प्रफुल्लता से भर जाते। कुछ लोग संकट के समय सहायता माँगने जाते, कुछ समारोहों के लिए आमंत्रण देने तो कुछ यूँ ही कौतूहलवश चल देते।

सभी प्रकार के अतिथियों का सदा हार्दिक स्वागत होता। स्वयं गुरुदेव भी बहुधा वहाँ जाया करते। बोधगया यात्रा में वे निवेदिता के सहयात्री थे। डॉ. बोस, स्वामी शंकरानंद, यदुनाथ सरकार तथा पटना के मथुरा नाथ सिन्हा भी साथ थे। ये सब एक महंत के अतिथि बने। उस आध्यात्मिक वातावरण के बीच कविवर रवींद्रनाथ का सुमधुर गायन अद्‌भुत से क्षणों की सृष्टि कर देता।

गुरुदेव व निवेदिता के संबंध मैत्रीपूर्ण थे, किंतु व्यावहारिक रूप में उन्होंने कभी मिलकर कार्य नहीं किया। उन्होंने यह अवश्य स्वीकारा कि निवेदिता के संपर्क में आने से उन्हें बौद्धिक लाभ हुआ।

वे सियालदह में अकसर जाया करते थे। एक बार निवेदिता भी डॉ. बोस के साथ वहाँ गई थीं। उन ग्रामवासियों के बीच निवेदिता ऐसे घुल-मिल गईं जैसे वर्षों से वहीं रह रही थीं। गुरुदेव ने उनके इस स्नेही भाव को परखते हुए कहा था—

''लगता है कि निवेदिता के रूप में साक्षात् मातृत्व ने ही मानव शरीर धरा है।''

निवेदिता और अवनींद्रनाथ टैगोर

अवनींद्रनाथ व निवेदिता का परिचय एक अमेरिकन राजदूत के घर हुआ था। सफेद चोगे में तपस्विनी सी लगती निवेदिता की तेजस्विता ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया। कला व राजनीति, इन दोनों धरातलों पर ही उनका संपर्क प्रगाढ़ हुआ। वे मानते थे कि निवेदिता उन सभी विदेशियों में सबसे ऊपर हैं, जो भारत से स्नेह रखते हैं।

अवनींद्रनाथ टैगोर कलकत्ता कला विद्यालय के प्राचार्य थे। पहले-पहल उनकी कला पर भी विदेशी आदर्शों की छाप थी, किंतु निवेदिता के संपर्क में आने के बाद वे भारतीय कला पद्धति को भी जानने-बूझने का प्रयास करने लगे। निवेदिता कहती थीं कि किसी भी कला को अपनी जड़ें

अपने ही देश में तलाशनी चाहिए व विदेशी कला का अंधानुकरण करते हुए, देश के प्रति गौरव तथा प्रेम को ही प्रेरणास्रोत मानना चाहिए। वे चाहती थीं कि कलाकार भारतीयता के विभिन्न रूपों तथा छवियों में ही अभिव्यक्त करें। उन्होंने कहा था—

''पूजा-अर्चना करती महिला, गंगा किनारे स्नान हेतु जुटे तीर्थयात्री, धर्म, भारतीय गाँव, पवित्र मंदिर, भोले-भाले निष्पाप बालकों के मुख—ऐसे जाने कितने ही विविध विषयों द्वारा कलाकार भारतीय जीवन का चित्रण कर सकते हैं।''

अवनींद्रनाथ टैगोर ने 'भारत-माता' को चित्रित किया तो निवेदिता बहुत प्रसन्न हुईं। उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था कि कलाकार ने भारतीयता के मर्म को जान लिया है।

यह निवेदिता के ही सुप्रयासों का फल था कि अवनींद्रनाथ के माध्यम से भारतीय कला आंदोलन को एक नई दिशा और पहचान मिली। उनके शिष्यों ने इस नवीन पद्धति को आगे बढ़ाया, जो आगे चलकर 'कलकत्ता स्कूल' के नाम से जानी गई।

सरला घोषाल व निवेदिता

टैगोर परिवार की सरला घोषाल से भी निवेदिता के घनिष्ठ संबंध रहे हैं। वे गुरुदेव की भतीजी थीं। वे एक महान् साहित्यकार तथा देशभक्त थीं तथा 'भारती' की संपादिका भी रहीं। स्वामीजी चाहते थे कि वे भी निवेदिता के साथ इंग्लैंड जाएँ तथा वेदांत का प्रचार करें; किंतु वे निजी कारणवश उनके प्रस्ताव का मान न रख सकीं, यद्यपि उन्हें हमेशा इस बात का अफसोस रहा। □

आत्मीय संबंध

डॉ. जगदीशचंद्र बसु भारत के महान् वैज्ञानिकों में से थे। वे तथा उनकी पत्नी श्रीमती अबला बसु आजीवन निवेदिता के परम आत्मीय रहे। निवेदिता ने प्रथम भेंट के दौरान श्रीमती बसु को हिंदू स्त्रियों की शिक्षा संबंधी विचार बताए तो उन्हें लगा कि ऐसा नहीं हो पाएगा, किंतु थोड़े ही समय में पाठशाला की उन्नति देख वे विस्मित हो उठीं। फिर तो महिला समाज से निवेदिता का परिचय करवाने में वे सबसे आगे रहतीं। वे प्राय: निवेदिता को अपने घर बुलातीं, जहाँ निवेदिता ब्राह्म-समाज की बैठकों में स्त्रियों की शिक्षा संबंधी विचार रखतीं।

पेरिस की भौतिक प्रदर्शनी में डॉ. बसु ने अपना प्रबंध पढ़ा तो स्वामी विवेकानंद व निवेदिता भी वहीं थे। उन्होंने न केवल करतल ध्वनि से उनका अभिनंदन किया बल्कि बसु की उपलब्धियों पर उन्हें हार्दिक बधाई भी दी।

एक बार डॉ. बसु विदेश में बीमार पड़े तो उन्होंने निवेदिता के घर विंबलडन में आश्रय लिया। निवेदिता और उनकी माँ ने बसु दंपती की यथायोग्य सेवा व सहायता की तथा उन्हें स्वास्थ्य लाभ के बाद ही जाने दिया।

जगदीशचंद्र बसु की वैज्ञानिक प्रतिभा को दबाने के लिए ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने जो चाल चली, निवेदिता उसकी साक्षी रहीं। उन्हें उस अन्याय से बहुत दु:ख हुआ था और उन्होंने इस विषय में अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाई। वे कदम-कदम पर डॉ. बसु की सहायता के लिए आगे आईं।

डॉ. बसु अपने साथ हुए अत्याचार से इतने खिन्न व निराश थे कि कोई राह नहीं सूझ रही थी, ऐसे में निवेदिता ने उन्हें प्रोत्साहित किया। उन्होंने बसु

द्वारा लिखित आविष्कारों की पुनर्रचना, संशोधन व संपादन में भरपूर सहयोग दिया। वे हर गरमी की छुट्टियों में बसु दंपती के साथ पहाड़ यात्रा पर जातीं। डॉ. बसु को लेखन कार्य करने में निवेदिता ने आर्थिक मदद की व्यवस्था भी की, ताकि उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो सकें।

निवेदिता ने उन्हें 'लिविंग एंड नॉन लिविंग कंपेरेटिव इलेक्ट्रो फिजियोलॉजी' व 'प्लांट रिस्पांस' आदि ग्रंथ लेखन में सहायता की। डॉ. बसु की बहन लावण्यप्रभा पाठशाला के शैक्षणिक कार्यों में हाथ बँटाती थीं। इस प्रकार वे सभी एक ही परिवार के सदस्य जैसे हो गए थे।

निवेदिता की असामयिक मृत्यु से बसु परिवार का एक सदस्य नहीं रहा। उनके जीवन में एक अकल्पनीय रिक्तता आ गई थी। निवेदिता चाहती थीं कि एक ऐसी प्रयोगशाला हो, जहाँ भावी वैज्ञानिक बिना किसी बाधा के कार्य कर सकें। वे प्राय: डॉ. बसु से इस बारे में चर्चा करतीं, किंतु जब वैसे विज्ञान मंदिर का उद्घाटन हुआ तो वे उसे देखने के लिए जीवित नहीं थीं।

बसु विज्ञान मंदिर में कमल-कुंड के ऊपर हाथ में जयमाला व प्रदीप लिये एक स्त्रीमूर्ति बनाई गई, जो संभवत: उस महान् नारी की ही याद दिलाती थी, जिसने उन्हें पग-पग पर शुभकार्य के लिए प्रेरित किया तथा अपने ज्ञानदीपक से उनका पथ प्रशस्त किया।

□

गुरु के पत्र शिष्या के नाम

भगिनी निवेदिता ने जिस साहस, बल, आत्मसंयम व निर्भीकता का परिचय दिया, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। तत्कालीन परिस्थितियों में केवल एक गुरु की पुकार पर अपनी मातृभूमि को छोड़कर और परिवार से विदा लेकर नए देश, नई माटी में बस जाना ऐसा विरले ही कर पाते हैं। संभवत: निवेदिता का अपने गुरु स्वामी विवेकानंदजी व भारत से पूर्व जन्म का कोई संबंध रहा होगा, तभी वे निस्स्वार्थ भाव से भारतीयों की सेवा का व्रत निभा सकीं।

स्वामीजी से भेंट के पश्चात् चाहे वे सदा भगिनी निवेदिता के साथ नहीं रहे, किंतु पत्रों के माध्यम से उन्होंने निरंतर संपर्क बनाए रखा। वे परस्पर पत्रों द्वारा प्रेरक-प्रेरित संबंध में बँधे रहे। स्वामीजी उन्हें पत्रों द्वारा अपने आदर्श व विचारों का परिचय देते, निराशाजनक हालात में मनोबल बढ़ाते, भावी दिशा-निर्देश देते, उनके भीतर सुप्त शक्तियों को जाग्रत् करने का प्रयास करते व आशीर्वाद तथा शुभ कामनाएँ देते। यहाँ आपके लिए उन्हीं पत्रों से कुछ उदाहरणार्थ दिए गए हैं, जो वास्तव में पठनीय हैं—

प्रिय कुमारी नोबल,

मेरा आदर्श वाक्य अवश्य ही थोड़े से शब्दों में कहा जा सकता है और वह है मनुष्य जाति को उसके दिव्य स्वरूप का उपदेश देना तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे प्रकट करने का उपाय बताना।

मेरी दृढ़ धारणा है कि तुममें कुसंस्कार नहीं है। तुममें वह शक्ति विद्यमान है, जो संसार को हिला सकती है, धीरे-धीरे और भी अन्य लोग

आएँगे। 'वीर' शब्द और उससे अधिक 'वीर कर्मों' की हमें आवश्यकता है। महामना, उठो! संसार दु:ख से जल रहा है। क्या आप सो सकती हैं? हम बार-बार पुकारें, जब तक सोते हुए देवता न जाग उठें, जब तक अंतर्यामी देव उस पुकार का उत्तर न दे दें। जीवन में और क्या है। इससे महान् कर्म क्या है···मैं केवल कहता हूँ—जागो,जागो! अनंतकाल के लिए तुम्हें मेरा आशीर्वाद!

प्रिय कुमारी नोबल,

अब मुझे तुम्हारे बारे में कुछ कहना है। प्रिय कुमारी नोबल, तुम्हारे अंदर जो ममता, भक्ति, विश्वास तथा गुणवत्ता विद्यमान है, यदि किसी को इन गुणों की प्राप्ति हो तो वह जीवन भर चाहे जितना भी परिश्रम क्यों न करे, इन गुणों के कारण ही उसका सौ गुना प्रतिदान हो जाता है। तुम्हारा सर्वांगीण मंगल हो! मेरी मातृभाषा में जैसा कहा जाता है—उसके अनुसार मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरा सारा जीवन तुम्हारे कार्य में अर्पित है। एकमात्र प्रभु ही निर्विकार तथा प्रेमस्वरूप हैं। तुम्हारे हृदय-सिंहासन पर वे चिराधिष्ठित हों, विवेकानंद की यही निरंतर प्रार्थना है।

प्रिय कुमारी नोबल,

मैं निष्कपट भाव से तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम्हारी प्रत्येक बात मेरे समीप मूल्यवान है तथा तुम्हारा प्रत्येक पत्र मेरे लिए अत्यंत आकांक्षा की वस्तु है। जब इच्छा तथा सुविधा हो, तभी नि:संकोच होकर तुम मुझे पत्र लिखना, मैं तुम्हारी एक भी बात को भूल न समझूँगा तथा किसी बात की भी उपेक्षा न करूँगा।

प्रिय कुमारी नोबल,

तुम्हारी समिति की कार्यप्रणाली से मैं पूर्णतया सहमत हूँ एवं भविष्य में तुम चाहे जो भी कुछ क्यों न करो, उसमें मेरी सहमति होगी, इस प्रकार की धारणा तुम कर सकती हो। तुम्हारी शक्ति व सहानुभूति पर मुझे पूरा विश्वास है। इसी बीच मैं तुम्हारे समीप अशेष रूप से रहता हूँ एवं प्रतिदिन तुम मुझ पर भार बढ़ा ही रही हो। इतना ही मुझे संतोष है कि यह सब कुछ दूसरों के लिए है। तुम अंग्रेज लोग अत्यंत सज्जन, धीर तथा सच्चे हो। भगवान् तुम्हें सदा

आशीर्वाद प्रदान करें।

प्रिय कुमारी नोबल,

यहाँ न आकर इंग्लैंड से ही तुम हमारे लिए अधिक कार्य कर सकती हो। दरिद्र भारतवासियों के कल्याणार्थ तुम्हारे विपुल आत्म-त्याग के लिए भगवान् तुम्हें आशीर्वाद प्रदान करें।

मेरा अनंत प्यार व आशीर्वाद जानना।

प्रिय कुमारी नोबल,

श्री स्टर्डी का एक पत्र कल मुझे मिला, जिससे मुझे यह मालूम हुआ कि तुमने भारत जाने का और स्वयं सब चीजों को देखने का मन में निश्चय कर लिया है। उसका उत्तर मैं कल दे चुका हूँ।

मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि मुझे विश्वास है कि भारत के काम में तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल रूप धारण करेगा। आवश्यकता है स्त्री की, पुरुष की नहीं—सच्ची सिंहनी की, जो भारतीयों के लिए, विशेषकर स्त्रियों के लिए काम करे।

भारत अभी तक महान् महिलाओं को उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे दूसरे राष्ट्रों से उन्हें उधार लेना पड़ेगा। तुम्हारी शिक्षा, सच्चा भाव, पवित्रता, महान् प्रेम, दृढ़ निश्चय और सबसे अधिक तुम्हारे केल्टिक रक्त ने तुमको वैसी ही नारी बनाया है, जिसकी आवश्यकता है, परंतु कठिनाइयाँ भी बहुत हैं। यहाँ जो दुःख, कुसंस्कार और दासत्व है, उसकी तुम कल्पना तक नहीं कर सकतीं। तुम्हें एक अर्धनग्न स्त्री-पुरुष के समूह में रहना होगा, जिनकी जाति और पृथकता के संबंध में विचित्र विचार हैं, जो भय और द्वेष से सफेद चमड़ी वालों से दूर रहना चाहते हैं और सफेद चमड़ी वाले जिनसे स्वयं अत्यंत घृणा करते हैं, फिर यहाँ भयंकर गरमी पड़ती है, अधिकांश स्थानों में हमारा शीतकाल तुम्हारी गरमी के समान होता है और दक्षिण में हमेशा आग बरसती रहती है।

नगरों के बाहर विलायती आराम की कोई सामग्री नहीं मिल सकती। ये सब बातें होते हुए भी यदि तुम काम करने का साहस करोगी तो हम तुम्हारा स्वागत करेंगे, सौ बार स्वागत करेंगे। मेरे विषय में यह बात है कि

जैसे अन्य स्थानों में वैसे ही मैं यहाँ भी कुछ नहीं हूँ, फिर भी जो कुछ मेरी सामर्थ्य होगी, वह तुम्हारी सेवा में लगा दूँगा।

इस कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व तुमको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए और यदि काम करने के बाद तुम असफल हो जाओगी अथवा अप्रसन्न हो जाओगी तो मैं अपनी ओर से तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि चाहे तुम भारत के लिए काम करो या न करो, तुम वेदांत को त्याग दो या उसमें स्थिर रहो, मैं मृत्युपर्यंत तुम्हारे साथ हूँ। हाथी के दाँत बाहर निकलते हैं परंतु अंदर नहीं जाते। इसी तरह मनुष्य के वचन वापस नहीं फिर सकते। यह मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ, फिर से तुमको सावधान भी करता हूँ कि तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए।

कुछ लोग किसी के नेतृत्व में सर्वोत्तम कार्य करते हैं। हर मनुष्य का जन्म पथ-प्रदर्शन के लिए नहीं होता है, परंतु सर्वोत्तम नेता वह है, जो 'शिशुवत् मार्ग प्रदर्शन करता है।' शिशु सब पर आश्रित रहते हुए भी घर का राजा होता है। कम-से-कम मेरे विचार से यही एक रहस्य है। बहुतों को अनुभव होता है, किंतु प्रकट कोई-कोई ही कर सकते हैं। दूसरों के प्रति अपना प्रेम, गुण-ग्राहकता और सहानुभूति प्रकट करने की शक्ति जिसमें होती है, उसे विचारों के प्रचार करने में औरों से अधिक सफलता प्राप्त होती है।

प्रिय निवेदिता,

डरने की कोई बात नहीं है। तुम्हारे विद्यालय के लिए धन अवश्य प्राप्त होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है और कदाचित धन न मिले तो उससे हानि ही क्या है। माँ जानती हैं कि वे किस रास्ते से ले जाना चाहती हैं। वे चाहें जिस रास्ते से ले जाएँ, सभी रास्ते समान हैं।

इस प्रकार के अंतरजातीय मिलन का उद्देश्य महान् है, जैसे भी हो सके, तुम उसमें अवश्य शामिल हो और यदि तुम माध्यम बनकर कुछ एक भारतीय महिला समितियों को उसमें सम्मिलित कर सको तो और भी अच्छा है।

कठोर एवं कोमल, सभी लोग धैर्य बनाए रखो—सबकुछ ठीक हो जाएगा। ये जो तुम्हें विविध अनुभव प्राप्त हो रहे हैं, मैं तो इसे ही पसंद करता हूँ। मुझे भी शिक्षा मिल रही है। जिस समय हम कार्य करने के लिए उपयुक्त सिद्ध होंगे, ठीक उसी समय धन और लोग अपने आप हमारे समीप आ पहुँचेंगे!

प्रिय निवेदिता,

तुम्हारे कार्य की सफलता देखकर मैं अति आनंदित हूँ। यदि हम लोग लगे रहें तो घटनाचक्र का परिवर्तन अवश्य होगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि तुम्हें जितने रुपए की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति यहाँ से अथवा इंग्लैंड से अवश्य होगी।

हम अपनी सारी शक्तियों को किसी एक विषय की ओर लगा देने के फलस्वरूप उसमें आसक्त हो जाते हैं, उसकी एक दिशा और भी है, जो नेतिवाचक होने पर भी उसके सदृश ही कठिन है—उस ओर हम बहुत कम ध्यान देते हैं, वह यह है कि क्षण भर में किसी विषय से अनासक्त होने की, उससे अपने को पृथक् कर लेने की शक्ति—आसक्ति व अनासक्ति, जब दोनों शक्तियों का पूर्ण विकास होता है, तभी मनुष्य महान् व सुखी हो सकता है।

प्रिय निवेदिता,

मन सर्वव्यापी है। इसका किसी स्थल से भी स्पंदन सुना जा सकता है और अनुभव किया जा सकता है।

प्रिय निवेदिता,

मेरा आशीर्वाद जानना तथा किंचित् मात्र भी निराश मत होना। वाह गुरु, वाह गुरु! क्षत्रिय रुधिर में तुम्हारा जन्म है। हम लोग जो गौरिक वसन धारण करते हैं, वह तो समरक्षेत्र में मृत्यु का ही साज है। व्रतपालन में जीवन में उत्सर्ग करना ही हमारा आदर्श है, न कि सिद्धि प्राप्ति की व्यग्रता। वाह गुरु!

कुटिल दुर्भाग्य के आवरण कृष्णवर्ण तथा दुर्भेद्य हैं! किंतु मैं ही सर्वमय प्रभु हूँ। जिस समय मैं ऊपर की ओर अपने हाथों को उठाता हूँ—तत्क्षण वे अंतर्हित हो जाते हैं। इन सारी वस्तुओं का कोई खास अर्थ नहीं होना एवं एकमात्र भय ही इनका जनक है। त्रास का भी मैं त्रासस्वरूप हूँ, रुद्र का भी मैं रुद्र हूँ। मैं ही अद्वितीय व एक हूँ। अदृष्ट का मैं नियामक हूँ, मैं ही कपालमोचन हूँ। वाह गुरु! माँ, तुम शक्तिशालिनी बनो। कांचन अथवा और किसी भी वस्तु के आधीन न होना, ऐसा होने पर ही सिद्धि हमारे लिए सुनिश्चित है।

प्रिय

माँ से प्रार्थना करो। नेता बनना बहुत कठिन है। संगठन के चरणों में अपना सबकुछ, यहाँ तक कि अपनी सत्ता तक को नेता तक के लिए अर्पण कर देना पड़ता है।

प्रिय निवेदिता,

मैंने पहले भी कभी तुमको कोई आदेश नहीं दिया है। अब तो किसी भी कार्य के साथ मेरा कोई संबंध नहीं है, अब फिर क्या आदेश दूँगा। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि जब तक तुम आंतरिकता के साथ माँ का कार्य करती रहोगी, माँ तब तक अवश्य ही तुम्हें ठीक मार्ग पर चलाती रहेंगी।

प्रिय निवेदिता,

सब प्रकार की शक्तियाँ तुममें उद्‌बुद्ध हों, महामाया स्वयं तुम्हारे हृदय तथा भुजाओं में अधिष्ठित हों! प्रतिहत महाशक्ति तुम्हारे अंदर जाग्रत् हों तथा यदि संभव हो तो इसके साथ ही तुम शांति भी प्राप्त करो—यही मेरी प्रार्थना है।

यदि श्रीरामकृष्णदेव सत्य हों तो उन्होंने जिस प्रकार मेरे जीवन में मार्ग-प्रदर्शन किया है, ठीक उसी प्रकार अथवा उससे भी हजार गुना स्पष्ट रूप से तुम्हें भी वे मार्ग दिखाकर अग्रसर करते रहें।

('पत्रावली', रामकृष्ण म., नागपुर से साभार)

□

निवेदिता की साहित्यिक उपलब्धियाँ

भगिनी निवेदिता को परम पूज्य स्वामी विवेकानंद से जो भी ज्ञान प्राप्त होता, उसे वे लेख रूप में लिख लेतीं। उन्हीं लेखांशों ने उनके विपुल लेखन साहित्य के लिए समृद्ध आधार प्रदान किया। एक बार उन्होंने इस विषय में अपनी बांधवी को लिखा था—

''मेरी पुस्तकें स्वामीजी की पुस्तकें ही तो हैं, क्योंकि उनकी प्रेरणा व लेखन-शक्ति मैंने स्वामीजी से ही तो पाई है।''

निवेदिता ने भारतीय विचारधारा पर अनेक पुस्तकें व लेख लिखे। उन लेखों में न केवल तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक जीवन की झाँकी मिलती है, अपितु एक सहृदया, भावप्रवण लेखिका की कुशल लेखनी का चमत्कार भी दिखता है, वे मन के भावों को कागज पर उतारने की कला में सिद्धहस्त थीं।

'मॉडर्न रिव्यू' के रामानंद चटर्जी ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कहा—

''निवेदिता एक जन्मजात पत्रकार थीं। यहाँ तक कि साधारण विषयों पर लिखे गए आगे लेखों में भी अंत:प्रेरणा, ओजस्विता, बुद्धि तथा मौलिकता की स्पष्ट छाप थी। सामान्य-से-सामान्य विषय को भी उनकी कलम एक विशिष्टता, एक सुंदरता प्रदान कर देती थी। वे अपनी पसंद से लेखन करतीं, अत: उनके पास क्रिया के लेखन के लिए स्थान न था।''

'काली द मदर' उनकी प्रथम प्रकाशित कृति थी। यह पुस्तक उन्होंने

अमेरिका में लिखी थी। 'दि स्टोरी ऑफ काली' तथा 'विजन ऑफ शिव' नामक अध्याय भारत में लिखे गए। उनमें काली को एक ममतामयी माँ के रूप में वर्णित किया गया है, जो मनुष्य रूपी शिशु को अपना प्रेममयी संरक्षण प्रदान करती है। विषय से संबंधित विभिन्न पक्षों की व्याख्या करने वाली इस पुस्तक को विशेष रूप से सराहा गया। उन्होंने माँ काली व काली पूजा के विषय में गहन तथा विस्तृत अध्ययन के बाद ही यह पुस्तक लिखी थी। 'विजन ऑफ शिव' में वे लिखती हैं—

''उनकी पीठ पीछे शोभायमान विपुल केशराशि ऐसी जान पड़ती है, मानो बहती हुई वायु नहीं, समय की धारा हो। यही धारा अखिल परिवर्तनी वस्तुओं का दर्शन कराती है। मानो जीवन-रूपी यात्रा में समय-रूपी धारा हर चीज को बहा ले जाएगी।

''माँ काली की अनंतता का प्रतीक नीला रंग काले वर्ण के समान जान पड़ता है। यही काली परछाईं मानो जीवन तथा मृत्यु के भयंकर व कड़वे यथार्थ का अनावरित रूप है।''

स्वामी दयानंदजी के आग्रह पर जब निवेदिता ने स्वामीजी की जीवन-कथा लिखने का कार्यभार लिया तो वे मानसिक दुविधा में पड़ गईं। उन्हें यही लगता था कि क्या उनकी लेखन क्षमता 'द मास्टर ऐज आई सॉ हिम' के साथ न्याय कर पाएगी? कुछ ही समय में उन्हें लगने लगा कि यह कार्य इतना सरल न था। ग्रंथ के एक-एक पृष्ठ से स्वामीजी के चरित्र को साकार करना, उनके जीवन के विभिन्न पत्रों को पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत करना, उनके विचारों को उचित रूप से प्रस्तुत करना, उनके विचारों में दिए रहस्यों को अपने शब्दों में अनावृत करना सचमुच काफी दुष्कर था। अंतत: निवेदिता ने तय किया कि वे गुरु को अपनी ही समझ के अनुसार चित्रित करेंगी। गुरु को जिस रूप में पाया है, वही रूप ग्रंथ के माध्यम से संसार को देंगी। धीरे-धीरे साधना फलीभूत होने लगी। उन्होंने माना कि वे गुरु से प्राप्त प्रेरणा से ही वह ग्रंथ लिख सकीं।

इसे वे जीवन का सर्वोत्तम ग्रंथ मानती थीं। उनकी मृत्यु के पश्चात् एक विद्वान् महानुभाव ने श्रद्धांजलि देते हुए कहा था—

''निवेदिता ने स्वामीजी को जैसे देखा, सुना व जाना, उसी रूप में चित्रित किया। उसने स्वामीजी के प्रत्येक वाक्य को एक प्रतिध्वनि दी है। गुरु

रूपी प्रकाश से प्राप्त दीप्ति का प्रतिबिंब पूरे ग्रंथ में दिखता है।''

ग्रंथ को साहित्य जगत् में अलौकिक स्थान मिला 'नोट्स ऑन सम वंडटिंग्स' में उन्होंने गुरुजी के साथ की गई यात्राओं व प्रवास का भावप्रवण तथा विशद वर्णन किया है। इस ग्रंथ को डायरी विधा में लिखा गया, हालाँकि आत्मकथात्मक शैली होने के बावजूद ग्रंथ में उनका स्वयं का उल्लेख काफी कम है।

'केदारनाथ ऐंड बदरीनारायण पिल्ग्रिम्स डायरी' में निवेदिता की बदरी-केदार यात्रा के अनुभव तथा घटनाएँ समाहित हैं। उन्होंने इस यात्रा में तीर्थयात्रियों की श्रद्धा व निष्ठा का जो रूप देखा, पुस्तक में वही सुंदर शब्दों में लिखा। इस पुस्तक में मार्ग में पड़ने वाले मंदिरों की वास्तुकला व प्राकृतिक पृष्ठभूमि का भी वर्णन है।

'दी वेव ऑफ इंडियन लाइफ' के प्रत्येक वाक्य से निवेदिता का भारत व भारतीयता के प्रति स्नेह छलकता है। इस ग्रंथ में उन्होंने हिंदू-परिवार तथा सामाजिक गठन का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है। उन्होंने भारतीय समाज को जिस रूप में देखा और जिस तरह उसके भावी रूप की कल्पना की, वह सब इस पुस्तक में है।

'स्टडीज फ्रॉम ऐन ईस्टर्न होम' में गद्य व पद्य रचनाओं का संकलन है। इसमें भारतीय परिवारों के जीवन की रूपरेखा देखते ही बनती है।

निवेदिता द्वारा किए गए प्रासंगिक लेखन के संग्रह से भी कई पुस्तकें तैयार की गईं। 'फुटफॉल्स ऑफ इंडियन हिस्टरी' में उनके ऐतिहासिक निबंधों का संग्रह है। उन्होंने ग्रंथ को भारतमाता को समर्पित करते हुए एक सुंदर कविता दी है—

THE FOOTFALLS

WE hear them, O Mother!
Thy footfalls
Soft, soft, through the ages
Touching earth here
And there, And the lotuses left on Thy footprints
Are cities historic

Ancient scriptures and poems and temples,
Noble strivings, stern struggles for right.
Where lead they, O Mother!
Thy footfalls?
Grant us to drink of their meaning!
Grant us the vision that blindeth
The thought that for man is too high
Where lead they, O Mother!
Thy footfalls?
Approach Thou, o Mother, Deliverer!
Thy children, Thy nurslings are we!
On our hearts be the place for Thy stepping,
Thine own, Bhumia Devi, are we
Where lead they, O Mother!
Thy footfalls.

कविता का भावार्थ निम्नलिखित है—

''हे माँ! हम अनंतकाल से आपकी मधुर पदचाप सुनते आ रहे हैं, जो धरती को जहाँ-तहाँ स्पर्श कर रहे हैं। ये प्राचीन व ऐतिहासिक नगर, ग्रंथ, काव्य व मंदिर तुम्हारे चरण-चिह्नों में अंकित कमल ही तो हैं। ये सभी महान् कार्य व सत्य की खोज में किया कठोर संघर्ष चरण कमलों के पद-चिह्न ही तो हैं।

''हे माँ! आपकी पदचाप कहाँ ले जाएगी हमें। हमें उनके अर्थों को जानने की शक्ति दो! हमें वह दिव्य-दृष्टि दो, जो इस विचार को निर्मूल कर दे कि मानव कितना महान् है।

''हे माँ! आपकी पदचाप कहाँ ले जाएगी हमें? हम तुम्हारे शरणागत हैं, हे मुक्तिदायिनी माँ, हम तुम्हारे शिशु, तुमसे ही तो पोषित हैं। आपके चरणकमलों का सदा हमारे हृदय में स्थान रहे। हे भूंपा देवी! हम तेरे ही तो हैं। हे माँ! आपकी पदचाप कहाँ ले जाएगी हमें!''

भारत में लिखे गए लेखों का संकलन कर 'रिलीजन ऐंड धर्म' प्रकाशित की गई। जिसमें धर्म के आविर्भाव प्रभाव से जुड़े अनेक निबंध हैं। 'एग्रेसिव

हिंदुज्म' में धर्म को सक्रिय बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया, ताकि राष्ट्रीय चरित्र का पुनर्निर्माण संभव हो सके। 'सिविक ऐंड नेशनल आइडियल्स' में निवेदिता द्वारा राष्ट्रीयता, कला व नागरिक शास्त्र आदि विषयों पर लिखे गए निबंध शामिल हैं। पुस्तक में उन्होंने बल दिया कि जब तक लोगों में नागरिकता के कर्तव्यों की प्रबल भावना उत्पन्न नहीं होगी, तब तक राष्ट्रीयता का अस्तित्व बना नहीं रह सकता। वे पुस्तक को राष्ट्रवादी की कामना से प्रारंभ करती हैं—

''मेरा विश्वास है कि भारत के वर्तमान की जड़े उसके अतीत में गहरी हैं और उसके सामने एक उज्ज्वल भविष्य है। हे राष्ट्रीयता! हर्ष अथवा विषाद के रूप में, सम्मान व लज्जा के रूप में, मेरे पास आओ, मुझे अपना बना लो।''

'हिंट्स ऑन नेशनल एजुकेशन इन इंडिया' में राष्ट्रीय शिक्षा, व्यावहारिक शैक्षणिक योजनाएँ, स्त्रियों व बच्चों के शिक्षा संबंधी नियमों का समावेश है। उन्होंने पुस्तक में इस विचार पर बल दिया कि युवा एवं शिक्षित वर्ग शिक्षा तथा प्रचार के लिए अनिवार्य रूप से आगे आए। शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो, जो भारतीय जीवन की गहरी समझ दे सके। बुद्धि के समान ही मनोवेग के प्रशिक्षण पर बल दिया जाए। राष्ट्र के निर्माण में भी शिक्षा का उपयोग हो। वे यहाँ विदेशी संस्कृति के भ्रामक उन्माद का भी खुलासा करती हैं।

स्त्रियों की शिक्षा संबंधी विषय उन्हें बेहद प्रिय थे। इस विषय में लेख के अलावा 'द प्रोजेम्ट ऑफ द रामकृष्ण स्कूल फॉर गर्ल्स', 'सजेशन फोर इंडियन विवेकानंद सोसाइटीज', 'द प्लेस ऑफ द किंडरगार्डन इन इंडियन स्कूल्स' व 'ए नोट ऑन को-ऑपरेशन' आदि लेख भी समाहित किए गए हैं।

प्रथम अमेरिका यात्रा के दौरान निवेदिता ने वहाँ के बच्चों की कक्षाएँ लेने का विचार बनाया था। वे उन्हें पौराणिक व धार्मिक हिंदू कथाएँ सुनाती थीं। हिंदू जीवन की पृष्ठभूमि को उजागर करने वाली पुरानी कहानियों के संग्रह से सजी दो पुस्तकें हैं, 'क्रेडल टेल्स ऑफ हिंदुइज्म' तथा 'मिथज ऑफ हिंदूज ऐंड बुद्धिस्ट्स'। दूसरी पुस्तक को वे स्वयं पूरा नहीं कर पाईं। इसके लेखन के दौरान ही उनका निधन हो गया था।

'लैंस स्मंग बुल्वस' में हिंदू समाज के संबंध में यूरोपीय प्रचारकों द्वारा फैलाई गई निंदा की तीव्र आलोचना की गई है।

भगिनी निवेदिता ने भारतीय कला व कलाकारों के संबधं में भी कई सुंदर एवं रोचक निबंध लिखे हैं। इन निबंधों व लेखों से यूरोपीय कला को भी सूक्ष्मता से जानने का अवसर मिलता है। अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने सदा भारतीय कलाओं के स्वतंत्र विकास को दिखाने का प्रयास किया।

भगिनी निवेदिता की साहित्यिक कृतियाँ हमें न केवल उनके गुरु व उनके साथ बिताए गए सुखद पलों की जानकारी देती हैं। बल्कि ये भारतीय समाज में व्याप्त जटिलताओं को भी गहराई से समझने का अवसर प्रदान करती हैं। उनकी भारत व भारतीयता विषयक धारणाओं, अपने मानस पिता के प्रति स्नेह, भारत की तत्कालीन दशा एवं स्त्री संबंधी चिंतन-मनन का लेखों में विशद सुंदर वर्णन मिलता है।

□□□